षष्टम अंक

वर्ष 3 संख्या 2
जुलाई-दिसम्बर, 2021

कृषि-जीवन

बुन्देलखण्ड कृषि इन्द्रधनुषी क्रांति की ओर अग्रसर

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284003 (उ.प्र.) भारत

कृषि–जीवन

वर्ष 3 संख्या 2
जुलाई-दिसंबर, 2021

संरक्षक
डा. अरविन्द कुमार
कुलपति

मुख्य संपादक
डा. अनिल कुमार
(निदेशक, शिक्षा)

संपादक
डा. मनमोहन जे. डोबरियाल
(प्राध्यापक)

संपादक सलाहकार
डा. एस. के. चतुर्वेदी
(अधिष्ठाता, कृषि संकाय)
डा. ए. के. पाण्डेय
(अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी)
डा. ए. आर. शर्मा
(निदेशक, शोध)
डा. मुकेश श्रीवास्तव
(कुलसचिव)
डा. एस. एस. सिंह
(निदेशक, प्रसार शिक्षा)
डा. कुसुमाकर शर्मा
(सलाहकार)

संपादक मंण्डल
डा. अमित तोमर
डा. गोविन्द विश्वकर्मा
डा. गौरव शर्मा
डा. शुभा त्रिवेदी
डा. राकेश चौधरी
(रा. ल. बा. के. कृ. वि. वि., झाँसी)
डा. मनीत राणा
(भा. चा. एवं चा. अनु. सं., झाँसी)

पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के अपने निजी है। संपादक, प्रकाशक की सहमति और उत्तरदायी होना अनिवार्य नहीं है। लेख में लेखक का पूरा पता प्रकाशित किया जाता है। अतः कोई भी जानकारी लेखक से ली जा सकती है।

निदेशक
ई-मेलः directoreducation-rlbcau@gmail-com

अनुक्रमणिका

कुलपति जी की कलम से
संपादकीयः ''प्राकृतिक एवं जैविक खेती में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का समावेश''

इस अंक मेंः

1. प्राकृतिक एवं जैविक खेती में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का समावेश
2. कृषि का इतिहास- प्राकृतिक ज्ञान की कसौटी
3. प्राकृतिक खेती हेतु वैदिक सिद्धांत एवं उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण
4. संपोषित खेतीः प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण संरक्षण की कुंजी
5. जैविक खेती के लिए जैव खादों का वैज्ञानिक उत्पादन एंव प्रबघंन
6. ग्लोमालिनः जैविक खेती में महत्वपूर्ण एक बहु उपयोगी जैव उत्पाद
7. मृदा की उर्वरा क्षमता बढ़ाते जैव उर्वरक
8. बुंदेलखंड क्षेत्र में जैविक खेती : एक समीक्षा
9. जैविक पशुपालन-एक उभरता व्यवसाय
10. संरक्षित तकनीक द्वारा सब्जियों का उत्पादन
11. खेती के नये आयाम ऊसर भूमि में करें फलों की जैविक खेती
12. प्राकृतिक खेती में सरसों की खली के उपयोग
13. मृदा परीक्षणः कुशल और लाभप्रद फसल उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया
14. भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) एवं सुदूर संवेदी प्रणाली (रिमोट सेंसिंग) के माध्यम से ऊसर भूमि का आंकलन
15. पर्वतीय क्षेत्रों में जैविक खेती हेतु सिंचित व असिंचित धान की उन्नत प्रजातियाँ
16. कृषि क्षेत्र में उपलब्धियाँ

प्रकाशक : निदेशालय,
रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी-284 003 (उ. प्र.) भारत

कापीराइटः रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

कुलपति जी की कलम से .....

भारत वर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिये खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है जिससे सीमान्त व छोटे कृषकों को जोत में अत्यधिक लागत लग रही है तथा जल, भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है इसके साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहे हैं। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षों से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धान्त पर खेती करने की सिफारिश की गई प्रदेश के कृषि विभाग ने भी इस प्रकार की खेती को अपनाने के लिए बढ़ावा दिया है एवं जैविक खेती का प्रचार-प्रसार कर रही है।

प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकुल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी, जिससे जैविक और अजैविक पदार्थों के बीच आदान-प्रदान का चक्र (पारिस्थितिकी तंत्र) निरन्तर चलता रहा था, जिसके फलस्वरूप जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता था। भारत वर्ष में प्राचीन काल से ही कृषि के साथ-साथ गौ पालन किया जाता था, जिसके प्रमाण हमारे ग्रांथों में प्रभु कृष्ण और बलराम हैं जिन्हें हम गोपाल एवं हलधर के नाम से संबोधित करते हैं अर्थात् कृषि एवं गोपालन संयुक्त रूप से अत्याधिक लाभदायी था, जोकि प्राणी मात्र व वातावरण के लिए अत्यन्त उपयोगी था। परन्तु बदलते परिवेश में गोपालन धीरे-धीरे कम हो गया तथा कृषि में तरह-तरह की रासायनिक खादों व कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है जिसके फलस्वरूप जैविक और अजैविक पदार्थो के चक्र का संतुलन बिगड़ता जा रहा है एवं वातावरण प्रदूषित होकर, मानव जाति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। अब हम रसायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों के उपयोग को कम कर, जैविक खादों एवं दवाईयों के उपयोग को बढावा दिया जा रहा है जिससे भूमि, जल एवं वातावरण शुद्ध रहेगा और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेंगे।

जैविक खेती कृषि की वह विधि है जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिये फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करती है। सन् 1990 के बाद से विश्व में जैविक उत्पादों का बाजार काफी बढ़ा है। ऐसी खेती जिसमें दीर्घकालीन व स्थिर उपज प्राप्त करने के लिए कारखानों में निर्मित रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशियों व खरपतवारनाशियों तथा वृद्धि नियंत्रक का प्रयोग न करते हुए जीवांशयुक्त खादों का प्रयोग किया जाता है तथा मृदा एवं पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण होता है, जैविक खेती कहलाती है। संपूर्ण विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर समस्या है, बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद्य उत्पादन की होड़ में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए तरह-तरह की रासायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों का उपयोग पारिस्थितिकी तंत्र (प्रकृति के जैविक और अजैविक पदार्थों के बीच आदान-प्रदान के चक्र) प्रभावित करता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति खराब हो जाती है, साथ ही वातावरण प्रदूषित होता है तथा मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट आती है।

बुंदेलखंड क्षेत्र में सर्वप्रथम 2001-02 में जैविक खेती का अन्दोलन चलाकर प्रत्येक जिले के प्रत्येक विकास खण्ड के एक गाँव में जैविक खेती प्रारम्भ कि गई और इन गाँवों को जैविक गाँव का नाम दिया गया। प्रदेश के प्रत्येक जिले में जैविक खेती के प्रचार-प्रसार हेतु चलित झाँकी, पोस्टर्स, बैनर्स, साहित्य, एकल नाटक, कठपुतली प्रदशन जैविक हाट एवं विशेषज्ञों द्वारा जैविक खेती पर उद्बोधन आदि के माध्यम से प्रचार-प्रसार किया जा रहा है एवं कृषकों में जन जागृति फैलाई जा रही है। जैविक खेती से मानव स्वास्थ्य का बहुत गहरा सम्बन्ध है। इस पद्धति से खेती करने में शरिर तुलनात्मक रूपसे अधिक स्वास्थ्य रहता है। औसत आयु भी बढती है। हमारे आने वाली पीढ़ी भी अधिक स्वस्थ्य रहेंगे।

जैविक खेती की विधि रासायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन दे सकती है अर्थात् जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णतः सहायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और भी अधिक लाभदायक है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है इसके साथ ही कृषको को आय अधिक प्राप्त होती है तथा अंतराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद अधिक खरे उतरते हैं। जिसके फलस्वरूप सामान्य उत्पादन की अपेक्षा में कृषक भाई अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक समय में निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, पर्यावरण प्रदूषण, भूमि की उर्वरा शक्ति का संरक्षण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती की राह अत्यन्त लाभदायक है। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए नितान्त आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हों, शुद्ध वातावरण रहे एवं पौष्टिक आहार मिलता रहे, इसके लिये हमें जैविक खेती की कृषि पद्धतियाँ को अपनाना होगा जोकि हमारे नैसर्गिक संसाधनों एवं मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित किये बगैर समस्त जनमानस को खाद्य सामग्री उपलब्ध करा सकेगी तथा हमें खुशहाल जीने की राह दिखा सकेगी।

(अरविन्द कुमार)
कुलपति

सम्पादकीय

''प्राकृतिक एवं जैविक खेती में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का समावेश''

भारत के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में वर्ष 2020-21 के दौरान कृषि का योगदान 19.9 प्रतिशत है जो कि वर्ष 2019-20 के 17.8% कि अपेक्षा काफी अधिक हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत की 46% आबादी एवं उनकी अर्थव्यस्था प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है, यानि उनकी आय और जीवन शैली कृषि से निर्धारित होती है। अगर इसकी तुलना अन्य देशों से की जाये तो यह काफी अधिक है। लगभग 21 प्रतिशत आबादी अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था कृषि पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर हैं एवं कृषि दुनिया में सबसे तेजी से बढ़ती आबादी के कुल आय का 30% प्रदान करती है। भारत में कृषि से उत्पन्न रोजगार की बात करें तो 2022 के आंकड़ों के अनुसार 41-49% लोगों को कृषि से रोजगार मिलता है। भारत मसालों, दलहन, दूध, चाय, काजू और जूट का सबसे बड़ा उत्पादक है तथा गेहूँ, चावल, फलों, सब्जियों, गन्ना, कपास इत्यादि में भी बड़े उत्पादकों की श्रेणी में सम्मिलित है। कृषि उत्पादों के बहुतायत में उत्पादन होने से भारत के कुल निर्यात में लगभग 14% का योगदान है।

प्राकृतिक संसाधनों कि दृष्टिकोण से देखा जाये तो भारत कृषि योग्य भूमि में दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है तथा 15 कृषि-जलवायु क्षेत्रों भारत वर्ष में मौजूद हैं। इन सबके साथ विश्व में उपलब्ध कुल 60 प्रकार कि मृदाओं में से 46 प्रकार की मिट्टी भारत में मौजूद हैं। प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुर उपलब्धता को देखते हुए भारतीय ग्रामीण समुदाय सदियों से एक प्राचीन स्वदेशी प्रथा के रूप में प्रोंतिक खेती करते आ रहे हैं, जिसके पीछे मुख्य भावना **''सर्वे भवन्तुसुखिनः सर्वे संतु निरामायः''** अर्थात सभी स्वस्थ एवं खुश रहें। यह पूर्णतया तभी संभव था जब हम रसायन मुक्त भोजन, जल एवं गुणवत्ता युक्त कृषि एवं पशु उत्पादों का सेवन करें। बढ़ती आबादी के दबाव के कारण भारतीय कृषि में आधुनिक कृषि तकनीकों जैसे कि रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और आनुवंशिक संशोधन तकनीकों के समागम से हरित क्रान्ति के फलस्वरूप भारत खाद्यान्न उत्पादन मे आत्मनिर्भर हो सका। साथ ही इन तकनीकों के दुष्प्रभाव जैसे कि मिट्टी कि उर्वरता में कमी, मवेशियों कि जनसंख्या एवं स्वास्थ्य में गिरावट, अत्यधिक रसायनों के उपयोग से कृषि उत्पादों का दूषित होना, पर्यावरण क्षरण, मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट एवं असाध्य रोगों की संख्या में वृद्धि आदि को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष (जलवायु परिवर्तन) रूप में वर्तमान में आभास किया जा रहा हैं।

इन परिस्थितियों को देखते हुए कृषि का मुख्य उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के दौर में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के साथ-साथ पर्यावरण का संरक्षण करना भी होना चाहिए। हालाँकि, हमारे पास भारत की 1.38 अरब की विशाल आबादी के लिए पर्याप्त भोजन कि व्यवस्था हेतु रासायनिक खेती को बदलने के लिए कोई त्वरित विकल्प नहीं हैं। परन्तु प्राकृतिक एवं जैविक खेती सर्वोत्तम वैकल्पिक विकल्पों में से एक हो सकती है। इस दिशा में, कृषि उत्पादन तकनीकों में नवाचार और स्वदेशी ज्ञान के वैज्ञानिक अनुप्रयोग अधिक टिकाऊ साबित हुए हैं, जैविक खेती हाल ही में लोगों के बीच लोकप्रियता प्राप्त कर रही है, चाहे वे स्वास्थ्य और पर्यावरण के मुद्दों से संबंधित हों या नए सुरक्षित अनुभवों की तलाश में हों। प्राकृतिक एवं विविधीकरण दोनों के लाभ जैविक खेती को बढावा देने के लिए अवसर प्रदान करती है। रासायनिक खेती से उत्पादित फसल की तुलना में जैविक खेती से उत्पादित फसल अपनी उच्च पोषण गुणवत्ता एवं विषाक्तमुक्त होने के कारण बाजार में बेचकर अधिक लाभ प्रदान करती है। दीर्घकालीन दृष्टिकोण से भी जैविक कृषि उत्पाद अधिक स्वास्थ्यवर्धक होता है।

यद्यपि जैविक खेती को तेजी से अपनाया जा रहा है तथा विश्व में लगभग 190 देशों के कम से कम 3.4 मिलियन किसानों द्वारा 74.9 मिलियन हेक्टयेर भूमि पर खेती की जा रही हैं, जो कि गत वर्षों कि अपेक्षा में निरंतर वृद्धिशील हैं। 2020 में जैविक खाद्य एवं पेय की वैश्विक बिक्री 120.6 बिलियन यूरो तक पहुँच गयी। यह सब आँकड़े यह दर्शाते हैं कि भारत की तरह अन्य विकासशील देशों में भी जैविक कृषि एवं जैविक उत्पाद अत्यधिक लोकप्रिय है जिसका मुख्य कारण आमजन में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के बारे में अधिक जागरूकता होना हैं। जैविक उत्पादकों की दृष्टि से भारत विश्व का सबसे बड़ा देश हैं और भारत 1.78 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर जैविक कृषि के साथ आठवें स्थान पर है।

अत्यधिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में जैविक कार्बन का स्तर भी लगातार गिरने से मिट्टी की जैविक गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। जैविक खेती से मिट्टी के स्वास्थ्य में भी सुधार होता है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार के रसायनों का उपयोग नहीं किया जाता है।

जैविक खेती के विस्तार से रासायनिक उर्वरकों पर होने वाले राजकोष के भारी व्यय को भी कम किया जा सकता हैं एवं इसके विपरीत जैविक खाद भी कम लागत पर उपलब्ध हो जाने से अधिक लाभ की भी सम्भावनाएं हैं। प्राकृतिक अथवा जैविक कृषि के विभिन्न तरीकों को आसानी से और वैश्विक स्तर पर लागू करना संभव है। शहरीकरण के विस्तार और विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण, जैविक खेती के लिए प्रौद्योगिकियों में कृषि मृदा सुधार को देखते हुए काफी संभावनाएं हैं। विकासशील राष्ट्रों के लिए जैविक खेती एक नवीन अवधारणा है, जिसको नैसर्गिक ज्ञान व कौशल से मात्रा, गुणवत्ता और विभिन्न प्रकार के उत्पाद उपलब्ध कराने की चुनौती को पूरा किया जा सकता है। लेकिन जैविक खेती को स्थायी कृषि और मानव स्वास्थ्य के लिए व्यापक रूप से अपनाना एक चुनौती, जिसके लिए हमें व्यापक शोध, विस्तार और जैविक प्रौद्योगिकियों के तेजी से हस्तांतरण के लिए जागरूकता कार्यक्रम पर कार्य करने की आवश्यकता हैं।

पारंपरिक भारतीय किसान मृदा उर्वरता एवं कीट प्रबन्धन, चीजे जो भारत मे जैविक उत्पाद तथा आर्थिक स्थिति को बढावा देती है, उनकी अच्छी जानकारी रखता है। ऐसे किसानो के पास ज्ञान का एक विशाल संग्रह, व्यापक अवलोकन, दृढ़ता और विशेष अभ्यास हैं। जैसे-जैसे हम पर्यावरण और उचित कृषि प्रबंधन के बारे में सीखना जारी रखते हैं, हम सतत विकास का समर्थन करने के लिए हरित तकनीक के नए तरीकों की खोज कर सकते हैं। जैविक खेती को नए स्थानों पर विस्तारित कर खाद्य सुरक्षा एवं पोषण सुरक्षा का नया अध्याय लिखा जा सकता है।

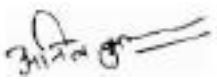

(अनिल कुमार)

विषय सूची

क्र.स.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	प्राकृतिक एवं जैविक खेती में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का समावेश	1
2.	कृषि का इतिहास - प्राकृतिक ज्ञान की कसौटी	10
3.	प्राकृतिक खेती हेतु वैदिक सिद्धांत एवं उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण	12
4.	संपोषित खेतीः प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण संरक्षण की कुंजी	17
5.	जैविक खेती के लिए जैव खादों का वैज्ञानिक उत्पादन एवं प्रबघंन	20
6.	ग्लोमालिनः जैविक खेती में महत्वपूर्ण एक बहु उपयोगी जैव उत्पाद	24
7.	मृदा की उर्वरा क्षमता बढ़ाते जैव उर्वरक	26
8.	बुंदेलखंड क्षेत्र में जैविक खेती : एक समीक्षा	29
9.	जैविक पशुपालन-एक उभरता व्यवसाय	35
10.	संरक्षित तकनीक द्वारा सब्जियों का उत्पादन	38
11.	खेती के नये आयाम ऊसर भूमि में करें फलों की जैविक खेती	42
12.	प्राकृतिक खेती में सरसों की खली के उपयोग	45
13.	मृदा परीक्षणः कुशल और लाभप्रद फसल उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया	47
14.	भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) एवं सुदूर संवेदी प्रणाली (रिमोट सेंसिंग) के माध्यम से ऊसर भूमि का आंकलन	52
15.	पर्वतीय क्षेत्रों में जैविक खेती हेतु सिंचित व असिंचित धान की उन्नत प्रजातियाँ	54
16.	कृषि क्षेत्र में नवाचार	60

प्राकृतिक एवं जैविक खेती में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का समावेश

शिवपाल सिंह चौहान, शालिनी दीक्षित, राघवेन्द्र सिंह, चन्द्रशेखर प्रहराज एवं नरेंद्र प्रताप सिंह

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर 208024 (उ.प्र.)

सारांश

प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करने के लिए उन्नत कृषि तकनीकी को अपनाकर हम अधिक आर्थिक लाभ अर्जित कर सकते हैं। बढ़ते हुऐ उर्वरकों के उपयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुण प्रभावित होते हैं, जिसके परिणामस्वरुप मृदा की उर्वरा शक्ति तथा फसल की उत्पादकता घटती जा रही है। आज व्यावसायिक खेती के नकारात्मक पहलुओं, कृषि उपादानों की बढती कीमतें एवं टिकाऊ खेती को बढ़ावा देने वाली वैकल्पिक कृषि की खोज के बढ़ते प्रयासों के मद्देनजर जैविक खेती के महत्वपूर्ण विकल्प है। जैविक खेती में भूमि की सजीवता, जल की गुणवत्ता एवं जैव विविधता को बनाये रखते हुए दीर्घकाल तक पर्यावरण को दूषित किये बिना टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

देश की बढती आबादी एवं कम उत्पादन ने देश को एक बड़ी चुनौती दी। इस चुनौती को हमारे कृषकों एवं वैज्ञानिकों ने गले लगाया और अनवरत प्रयासों से खाद्यान्न में 1980 में आत्मनिर्भरता अर्जित की। आत्मनिर्भरता के सपनों में उन्नतशील प्रजातियों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, सिंचाई की सुविधा एवं उचित प्रबन्धन प्रमुख कारक थे। हरित क्रांति के कारण सन् 2020-21 में खाद्यान्नों का उत्पादन 308 मिलियन टन तक पहुँच गया है। देश न केवल खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर है बल्कि खाद्यान्नों के निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा भी अर्जित कर रहा है। कृषि हमारे देश की अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्रोत है तथा देश की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। देश की लगभग 135 करोड़ आबादी के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, रोजगार प्रदान करने तथा गरीबी कम करने में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश की बढती जनसंख्या एवं विकास के कारण भूमि का उपयोग कृषि के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों जैसे- उद्योगों, सड़कों, आवासों आदि के लिए बढ़ता जा रहा है। प्राचीन काल में परम्परागत खेती में वातावरण का ध्यान रखते हुए खेती की जाती थी, जिसमें जैविक व अजैविक पदार्थों के बीच में निरंतर आदान प्रदान चलता रहता था। जैविक खेती का विकास सन् 1990 यानी की बीसवीं सदी के प्रारभ में हुआ है।

जीरो (शून्य) बजट प्राकृतिक खेती

प्राकृतिक खेती की अवधारणा श्री सुरेश पालेकर द्वारा विकसित की गई थी। उन्होंने शून्य उत्पादन सामग्री के आदिवासी कृषि से प्रभावित कृषि के इस प्रतिरूप (मॉडल) को विकसित किया है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती प्रतिरूप के पीछे मूल धारणा है कि पौधों के विकास के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्व पौधों के जड़ क्षेत्र के आस पास उपलब्ध हों, लेकिन मिट्टी में पोषक तत्वों का अनुपलब्ध रूप में एक बड़ा हिस्सा परिवर्तित करने की आवश्यकता है। इस प्रकार शून्य बजट प्राकृतिक खेती का पूरा प्रयास मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जैविक खादों का पुनः निर्माण करना है एवं मृदा रोगाणुओं की खेती के लिए एक मात्र स्रोत गाय का गोबर स्थानीय स्तर पर उपलब्ध है। श्री सुरेश पालेकर ने गाय के गोबर के प्रभावी उपयोग पर छह साल तक शोध किया और उन्होंने कई निष्कर्ष निकाले जैसे- संकर गाय और आधा देसी गाय का गोबर व आधा बैल अथवा भैंस के गोबर को मिलाकर उपयोग करने की तुलना में देशी गाय का गोबर प्रभावी होता है। जितना संभव हो गाय के गोबर का प्रयोग ताजा एवं मूत्र प्रयोग जितना पुराना हो उतना अधिक प्रभावी होता है। इस प्रकार शून्य बजट प्राकृतिक खेती के लिए एक देशी गाय तीस एकड़ जमीन के लिए पर्याप्त है।

हमारे देश में अभी भी अधिकतर वर्षा आधारित क्षेत्रों में खेती परम्परागत (प्राकृतिक) विधियों द्वारा की जाती है जिसके कारण फसल उत्पादन बहुत ही कम होता है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन एवं उनमें आई कमी को देखते हुए वर्तमान परिदृश्य के तहत कृषि की उत्पादकता एवं उसमें स्थिरता को बनाये रखना, किसानों की आय बढ़ाना, गरीबी को कम करना तथा जलवायु परिवर्तन के परिवेश में खाद्यान्नों के उत्पादन में स्थिरता लाना प्रमुख चुनौतियाँ हैं। सन् 1940 में बीज बोने के लिए बिना भूमि की जुताई किये सीधे बीज बोने के उद्देश्य हेतु मशीनरी के विकास की अनुमति दी गई। सन् 1970 के दशक की शुरुआत में बिन जुताई की खेती का ब्राजील में प्रचलन प्रारंभ हुआ तथा किसानों एवं वैज्ञानिकों ने बिना जुताई की खेती तकनीक को प्रणाली में बदल दिया, जिसे आज संरक्षित कृषि कहा जाता है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के आयाम

शून्य बजट प्राकृतिक खेती प्रमुख चार आयाम हैं, जो निम्नलिखित हैं-

- **बीजामृतः** यह स्थानीय गाय के गोबर (5 कि.ग्रा.), गोमूत्र (5 लीटर), चूना (50 ग्राम), पानी (20 लीटर) और खेत की

मेढ़ से ली गई मुट्ठी भर मिट्टी के साथ बनाया जाने वाला बीज उपचार है।

- **जीवामृतः** यह स्थानीय गाय के गोबर (10 कि.ग्रा.), गोमूत्र (5 लीटर), गुड़ (2 कि.ग्रा.), दाल का आटा (2 कि.ग्रा.), पानी (200 लीटर) और खेत की मेढ़ से ली गई मुट्ठी भर मिट्टी का तरल है।
- **मल्चिंगः** मल्चिंग तीन प्रकार की होती है। पहली मिटटी की मल्चिंग द्वारा पानी का संरक्षण करना तथा साथ ही खरपतवारों को नियंत्रित करना। दूसरा है भूसा मल्चिंग जहाँ फसल अवशेषों को प्राकृतिक अपघटन के लिए खेत में ही रहने दिया जाता है और बाद में पोषक तत्वों की हानि को रोकने के लिए भूमि में मिला दिया जाता है। तीसरी मल्चिंग सह-फसली एवं मिश्रित फसल के साथ सजीव मल्चिंग है।
- **वाफसाः** यह मिट्टी में सूक्ष्म जलवायु का निर्माण है जिसके द्वारा मिटटी के जीव व जड़ें मिट्टी में उपलब्ध अथवा पर्याप्त हवा और आवश्यक नमी पानी दो मिटटी के कणों के बीच गुफाओं में 50 प्रतिशत वायु और 50 प्रतिशत जल वाष्प की स्थिति के साथ स्वतंत्र रूप से रह सकते हैं।

खेती की इस प्रणाली में उत्पादन सामग्री शून्य होने के बावजूद उपज उच्चतम होती है क्योंकि इसमें फसल अवशेषों का समावेश और मिट्टी में सूक्ष्म जैविक गतिविधियों के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता का रखरखाव शामिल है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती की लागत और प्रभावशीलता पारंपरिक खेती की तुलना में एक किसान हितैषी और पर्यावरण के अनुकूल है।

प्राकृतिक खेती के सिद्धांतः

न्यूनतम या शून्य जुताईः प्राकृतिक खेती में शून्य जुताई रखते हुए बीजों को सीधे मशीन या अन्य साधनों द्वारा बुवाई करने के बाद बीजों को मिट्टी से ढक दिया जाता है। बीजों की सीधे बुवाई करने के अनेक लाभ हैंः-

- जुताई न करने से भूमि का क्षरण बहुत कम होता है।
- जुताई न करने से समय और धन की बचत होती है।
- भूमि में नमी बनी रहती है और जलभराव की समस्या बहुत कम होती है।
- मृदा के अन्दर और बाहर जैव-विविधता को क्षति नहीं होती है।

फसल अवशेषों से भूमि को ढक कर रखनाः बीजों को सीधे बुवाई करने के पश्चात् पिछली फसल से प्राप्त अवशेषों से भूमि को कम से कम 30 प्रतिशत तक ढक कर रखना चाहिए। फसल अवशेषों से भूमि को ढक कर रखने के अनेक लाभ हैंः-

- यह मृदा क्षरण रोकने में सहायक है।
- यह मृदा में कार्बनिक तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों को बनाये रखता है।
- मृदा में नमी अधिक दिनों तक संचित रहती है।
- कीट व्याधि एवं खरपतवारों को कम करने में सहायक होता है।

फसल विविधीकरण को बढ़ावा देनाः भूमि के एक ही भूखण्ड पर विविधीकरण द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाने एवं कृषि जैव विविधता को सक्षम बनाता है जिससे सूक्ष्म पारिस्थितिक तंत्र बनते हैं। फसल विविधिकरण पद्धत्ति अपनाने के अनेक लाभ हैंः-

- मृदा में पोषक तत्वों का प्रभावी रूप से प्रबन्धन होता है।
- मृदा एवं जल प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
- मृदा संरचना में सुधार होता है।
- जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
- फसल उत्पादन में स्थायित्व तथा वातावरण को सुरक्षित बनाने में सहायक होता है।

प्राकृतिक एवं जैविक खेती में आधुनिक प्रौद्योगिकियों का समावेश

मृदा एक महत्वपूर्ण संसाधन है। मृदा स्वास्थ्य कृषि उत्पादकता को बनाये रखने और पर्यावरणीय संसाधनों की सुरक्षा करने में मृदा की क्षमता को प्रदर्शित करता है। मृदा स्वास्थ्य प्रमुख रूप से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक घटकों पर निर्भर करता है। मृदा में रासायनिक खादों के अंधाधुंध उपयोग तथा जैविक खादों के उपयोग में कमी के कारण मृदा में ह्यूमस एवं कार्बनिक पदार्थों की कमी हो गई है। इसके साथ ही मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों जिंक, बोरोन, मैंगनीज, सल्फर, कॉपर एवं मोलिब्डेनम की कमी व्यापक रूप से पायी गई है। फसलों में मृदा जनित रोगों का प्रकोप बढ़ रहा है। अम्लीय एवं क्षारीय पी. एच. वाली मृदा में पोषक तत्वों का घटना, मृदा में पोषक तत्व एवं जल धारण की क्षमता में कमी होना और भू-जल प्रदूषण जैसे कारणों से मृदा स्वास्थ्य प्रभावित हुआ है। जिसके फलस्वरूप मृदा उत्पादकता में भी गिरावट आयी है। प्राकृतिक खेती द्वारा उत्पन्न समस्याएँ निम्नलिखित हैंः-

- मृदा उर्वरता का ह्रास होना।
- कृषि की बढती लागत और लाभ कम होना।
- मृदा में जैविक कार्बनिक पदार्थों का अपर्याप्त पुनर्चक्रण।
- एकल फसल प्रणाली के प्रचलन से मृदा में पोषक तत्वों का असंतुलित उपयोग।
- भू-क्षरण, मृदा अपरदन एवं लवणता का विकास।
- जैव विविधता का ह्रास।

- प्राकृतिक संसाधन (उर्वरक, जल, ऊर्जा आदि) उपयोग दक्षता में कमी होना।
- इसमें खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशी का प्रयोग करना पड़ता है जो खर्चीला माध्यम है।
- फसलों में पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए काफी मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है।
- फसल अवशेष जलाने या निकलने से भूमि की ऊपरी सतह नग्न हो जाती है जिससे लाभदायक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

जैविक खेती

जैविक खेती कृषि की वह पद्धति है जिसमें पर्यावरण को स्वच्छ, प्राकृतिक संतुलन को कायम रखते हुए भूमि, जल एवं वायु को प्रदूषित किये बिना दीर्घकालीन व स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जाता है। वर्ष 2015-16 में भारत में जैविक कृषि के तहत कुल क्षेत्रफल 47.1 लाख है. है। जिसमें 7.2 लाख हैक्टेयर कृषि भूमि पर जैविक खेती की जा रही है। भारत वर्ष के मध्य प्रदेश में सबसे ज्यादा जैविक खेती होती है, इसके बाद महाराष्ट्र और राजस्थान का स्थान है। इस पद्धति में संश्लेषित उर्वरकों, कीटनाशकों, वृद्धि नियंत्रक रसायनों का उपयोग कम से कम व आवश्यकतानुसार किया जाता है। यह पद्धति रासायनिक कृषि की अपेक्षा सस्ती एवं स्थाई है। इसमें मृदा को एक जीवित माध्यम मिल गया है। जिसका आहार जीवांश पदार्थ हैं, जीवांश पदार्थ गोबर, पौधे के अवशेष आदि के रूप में मृदा को प्राप्त होते हैं। इसमें जीवांश खादों के उपयोग से पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति हो जाती है। साथ ही साथ इनके उपयोग से उगाई गई फसलों पर बीमारियों एवं कीटों का प्रकोप भी कम होता है जिससे हानिकारक रसायन, कीटनाशकों के छिडकाव की आवश्यकता नहीं रहती है। इससे फसलों से प्राप्त खाद्यान्न, फल एवं सब्जी आदि हानिकारक रसायनों से पूर्णतः मुक्त होते हैं। जीवांश खाद के उपयोग से उत्पादित खाद्य पदार्थ अधिक स्वादिष्ट एवं पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। जैविक खेती में मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए फसल चक्र, पौधों के बचे अवशेष, पशुओं द्वारा प्रदत्त खाद, फलीदार पौधे, हरी खाद, फार्म के जैविक अपशिष्ट पदार्थ, कम्पोस्ट, खनिज पदार्थ, जैव उर्वरकों आदि का उपयोग किया जाता है समय की माँग को देखते हुए किसानों को जैविक खेती की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है। जैविक खेती से होने वाले लाभ निम्नलिखित हैः-

- मृदा की गुणवत्ता एवं उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है।
- जैविक खेती में रासायनिक खादों पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी और आय में वृद्धि होती है।
- फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- मृदा के जल स्तर और जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- मृदा और खाद्य पदार्थ में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।
- कचरे का उपयोग कम्पोस्ट खाद बनाने में करने से बीमारियों में कमी आती है।
- प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग होता है।
- जैविक खादों के संतुलित प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविकीय गुण-धर्मों में वृद्धि होती है और उत्पाद में आकर्षक स्वाद मिलता है।

वर्तमान परिवेश में जैविक खेती की आवश्यकता

जैविक खेती कृषि की वह विधि है जिसमें रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के बिना प्रयोग किये फसलों का उत्पादन किया जाता है। इस विधि में फसलों में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए जैव उर्वरकों एवं कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करते हैं तथा कीट-व्याधियों की रोकथाम के लिए जैविक उत्पादों और फसल पद्धति का अनुसरण करते हैं। जैविक कृषि एक अद्वितीय उत्पादन प्रबंधन प्रणाली है जो जैव विविधता, जैव चक्र तथा भूमि की जैविक गतिविधि सहित कृषि पारिस्थितिक तंत्र को बढ़ावा देती है। यह एक ऐसी उत्पादन प्रणाली है जिसमें अकार्बनिक रासायनिक उत्पादों जैसे उर्वरक, कीटनाशी, पौध वर्धक पदार्थों को पूर्ण रूप से छोड़ कर फसल चक्र, फसल अवशेषों, जीवांश खादों, हरी खादों, यांत्रिक खेती, प्राकृतिक खनिज भंडारों से प्राप्त खनिज तत्वों का सम्यक प्रयोग किया जाता है। फसल सुरक्षा हेतु हर्बल उत्पाद एवं जैव कीटनाशी आदि का प्रयोग भी इसका अंग है। मृदा में पाए जाने वाले लाभकारी सूक्ष्म जीवों से निर्मित जैव उर्वरकों को भी विशेष रूप से महत्व दिया जाता है। उपरोक्त सभी उपादान जैविक कृषि के महत्वपूर्ण कारक माने जाते हैं।

देश की बढती आबादी एवं कम उत्पादन ने देश को एक बड़ी चुनौती दी। इस चुनौती को हमारे कृषकों एवं वैज्ञानिकों ने गले लगाया और अनवरत प्रयासों से खाद्यान्न में1970-80 में आत्मनिर्भरता अर्जित की। आत्मनिर्भरता के सपनों में उन्नतशील प्रजातियों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, सिंचाई की सुविधा एवं उचित प्रबन्धन प्रमुख कारक थे। खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता हासिल करने के साथ-साथ कुछ देशों को खाद्यान्न निर्यात भी किया। इस उपलब्धि का पूरा श्रेय हमारे कृषकों को जाता है। देश की लगातार बढती जनसंख्या से दिन प्रतिदिन खाद्यान्नों की माँग बढ़ती जा रही है तथा भूमि का बंटवारा होने के कारण कृषि जोतों का आकार निरंतर घटता जा रहा है। समय की मांग को देखते हुये किसानों को जैविक खेती की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है।

- जैविक खेती द्वारा मृदा की उर्वरा क्षमता में वृद्धि होती है।

- भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है तथा जल प्रदूषण में कमी आती है।
- मित्र एवं लाभकारी कीटों का संरक्षण किया जा सकता है।
- रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है।
- प्रायः जैविक उत्पादन द्वारा उत्पादित अनाज, फल व सब्जी का मूल्य रासायनिकों द्वारा उत्पादित पदार्थों की तुलना में अधिक होता है।
- जैविक खेती करने से रोजगार के अवसर भी मिलते हैं इससे समय-समय पर होने वाली बेरोजगारी की समस्या भी कम होती है।
- जैविक खेती से कई अप्रत्यक्ष लाभ किसानों और उपभोक्ताओं को प्राप्त होते हैं।
- जैविक खादों के संतुलित प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविकीय गुण-धर्मों में वृद्धि होती है और उत्पाद में आकर्षक स्वाद मिलता है।

आधुनिक समय में बढती हुई जनसंख्या के खाद्यान्न पूर्ति हेतु किसान रासायनिकों जैसे खाद, खरपतवारनाशी, रोगनाशी तथा कीटनाशकों का प्रयोग कर रहे हैं। इनके प्रयोग से किसान प्रथम वर्ष में तो अधिक उत्पादन प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु धीरे-धीरे इनके प्रयोग से मृदा की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है और फसलों की उत्पादन क्षमता घट जाती है। ऐसी स्थिति में किसान अधिक उत्पादन करने के लिए अंधाधुंध रासायनिकों का प्रयोग कर रहे हैं। इन रसायनों की बाजार में अधिक कीमत होने के कारण किसान की खेती की लागत बढ़ जाती है इसके लिए किसानों को साहूकारों से ऋण लेना पड़ता है। इन रसायनों के प्रयोग से पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। समय की माँग को देखते हुये किसानों को जैविक कृषि की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है। रासायनिकों के प्रयोग से मृदा में कार्बनिक तत्वों की कमी आ जाती है जिससे मृदा की उर्वराशक्ति क्षीण हो जाती है। इनके प्रयोग से मृदा में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं उनके जीवन पर दुष्प्रभाव पड़ता है। शोधों में यह पाया गया है कि केंचुआ जो कि मृदा की उर्वरा क्षमता में वृद्धि करता है जिसे किसानों का मित्र माना जाता है, अत्यधिक रसायनों के प्रयोग से इनकी संख्या में भारी कमी पाई गई है। कीटनाशकों के लगातार प्रयोग से कीट अपने अंदर प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर लेते हैं जिससे इन कीटों का नियंत्रण करना कठिन हो जाता है। खाद्यान्नों और बागवानी फसलों में प्रयोग होने वाले रसायन भोजन के माध्यम से मनुष्य के शरीर में प्रवेश के विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को जन्म देते हैं।

जैविक खेती एवं जैव प्रबन्धन

मृदा एक महत्वपूर्ण संसाधन है, जैविक कृषि के सन्दर्भ में मृदा स्वास्थ्य, कृषि उत्पादकता को बनाये रखने और पर्यावरणीय संसाधनों की सुरक्षा करने में मृदा की क्षमता को प्रदर्शित करता है। जैव प्रबन्धन के सभी कार्य परस्पर भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों से प्रभावित होते हैं। जैविक कृषि एक जटिल पारिस्थितिकी तंत्र है जहाँ सूक्ष्म जीव और पौधों की जड़ें, खनिज कणों एवं कार्बनिक पदार्थों को गतिशील संरचना में बाँधती है जिससे मृदा में जल, हवा व पोषक तत्वों का नियंत्रण होता है। अतः मृदा की क्रियाशीलता एवं उर्वरता को बनाये रखने के लिए इसका उचित प्रबन्धन करना अति आवश्यक है।

1. **हरी खादः-** हरी खाद का प्रयोग करने से मृदा में कार्बन, नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश जैसे मुख्य पोषक तत्वों के अतिरिक्त सभी द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है। हरी खाद के लिए मुख्यतः दलहनी फसलों का प्रयोग किया जाता है। इनमे ढैंचा, सनई, लोबिया, मूँग, उर्द व ग्वार प्रमुख हैं। हरी खाद के उपयोग से न सिर्फ मृदा में नत्रजन उपलब्ध होती है बल्कि मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा में भी सुधार होता है और वातावरण तथा मृदा प्रदूषण की समस्या को भी कम किया जा सकता है। हरी खाद के उपयोग से लागत घटती है और किसानों की आर्थिक स्थिति बेहतर होती है। हरी खाद का प्रयोग करने से मृदा में लगभग 30-35 कि.ग्रा. नत्रजन, 4-5

ढैंचे की हरी खाद

ढैंचे की फसल को मिट्टी में मिलाना

कि.ग्रा. फॉस्फोरस, व 15-20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर उपलब्ध हो जाते हैं इसके अतिरिक्त मैग्नीशियम, सल्फर, जस्ता, तम्बा, मैंगनीज एवं आयरन की उपलब्धता को भी बढाती है।

2. **केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट):-** केंचुआ खाद या वर्मी कम्पोस्ट पोषक पदार्थों से भरपूर एक उत्तम जैविक खाद है। यह केंचुओं द्वारा वनस्पतियों, घास-फूस, कचरे आदि कार्बनिक पदार्थों को विघटित करके बनाई जाती है। केंचुओं की कुछ प्रजातियाँ भोजन के रूप में अपघटनशील कार्बनिक पदार्थों का उपयोग करती हैं। इन कार्बनिक पदार्थों की कुल मात्रा का 5-10 प्रतिशत भाग शरीर की कोशिकाओं द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और शेष मल के रूप में विसर्जित हो जाता है, जिसे वर्मीकास्ट कहा जाता है। केंचुओं द्वारा मृदा की उर्वरता, उत्पादकता और मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों को लम्बे समय तक अनुकूल बनाये रखने में मदद मिलती है। वर्मीकम्पोस्ट में साधारण मृदा की तुलना में पाँच गुना अधिक नत्रजन, सात गुना अधिक फॉस्फोरस व पोटैशियम तथा दो गुना अधिक मैग्नीशियम व कैल्शियम होते हैं। यह सब प्रकार की फसलों के लिए प्राकृतिक, सम्पूर्ण एवं संतुलित आहार है।

3. **कम्पोस्ट खादः** पौधों के अवशेष पदार्थ, घर का कूड़ा-कचरा, पशुओं का गोबर आदि का जीवाणुओं द्वारा विशेष परिस्थितियों में विच्छेदन होने से बनने वाली खाद को कम्पोस्ट खाद कहते हैं। अच्छी कम्पोस्ट खाद गंध रहित भूरे काले रंग की एवं भुरभुरी होती है। इसमें 0.5 से 1.0 प्रतिशत पोटाश एवं अन्य गौण पोषक तत्व होते हैं। इसके उपयोग से फसलों व पौधों में पोषक तत्वों का संचार होता है एवं मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है। मृदा में कम्पोस्ट खाद देने से ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है जिससे उत्पादन एवं उर्वरता में वृद्धि होती है। कम्पोस्ट खाद बनाने में प्रक्षेत्रों से प्राप्त फसल अवशेषों का बेहतर सदुपयोग होता है।

4. **जीवाणु उर्वरकः-** जैव उर्वरक एक जीवाणु खाद है। जैव उर्वरक लाभकारी जीवाणुओं का एक ऐसा जीवंत मिश्रण है जिसका बीज, जड़ों या मिट्टी में उपयोग करने पर पौधों को अधिक मात्रा में पोषक तत्व मिलने लगते हैं तथा साथ ही साथ मिट्टी की जीवाणु क्रियाशीलता एवं सामान्य स्वास्थ्य में भी वृद्धि होती है। जैव उर्वरक मृदा की उर्वरा शक्ति एवं पोषण गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। फसलों में जैव उर्वरकों का इस्तेमाल करने से वायुमंडल में उपस्थित नत्रजन तथा भूमि में मौजूद अघुलनशील फॉस्फोरस आदि पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में परिवर्तित होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं। जैव उर्वरकों को बीज या जैविक खादों के साथ मिलाकर मिट्टी में मिलाने पर खेत में इन जीवाणुओं की संख्या में तेजी से वृद्धि होती है और नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम आदि तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है। नत्रजन हेतु राइजोबियम, एजेटोबेक्टर, एजोस्पाइरिलम तथा फॉस्फोरस हेतु फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु कल्चर का उपयोग किया जाता है। टिकाऊ खेती एवं मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए जैविक उर्वरकों का प्रयोग अति आवश्यक है। ये पादप रोगों की रोकथाम के साथ-साथ पर्यावरण को भी स्वच्छ रखते हैं, इन्हें जैव कल्चर या जीवाणु खाद भी कहते हैं। इन जीवाणुओं के प्रयोग से लगभग 15-30 प्रतिशत फलोत्पादन में वृद्धि हो जाती है।

5. **जैविक खादः** देश में प्रयोग किये जाने वाली जैविक खादों में गोबर खाद, कम्पोस्ट खाद, वर्मी कम्पोस्ट, मुर्गी खाद, पशुओं के नीचे का बिछावन, सुअर एवं भेड़ बकरियों की खाद तथा नीम खली आदि प्रमुख हैं। किसान छोटे या बड़े स्तर पर पशुपालन करते हैं। पशुपालन के साथ-साथ आसानी से जैविक खाद का निर्माण कर सकते हैं। इनके प्रयोग से मृदा की उर्वरता तथा जल धारण की क्षमता बढती है। जैविक खादों में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा प्रतिशत (तालिका-1) में दर्शाया गया है:-

तालिका 1: जैविक खादों में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा (प्रतिशत में)

जैविक खाद	नत्रजन (%)	फॉस्फोरस (%)	पोटाश (%)
गोबर खाद	0.50	0.30	0.50
कम्पोस्ट खाद	0.60	1.50	2.30
मुर्गी खाद	3.80	2.50	1.70
भेड़ एवं बकरी की खाद	3.00	1.00	2.00
नीम खली	5.22	1.08	1.48
महुआ खली	2.51	0.80	1.85
सुअर खाद	2.70	2.50	2.00
केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट)	1.50	1.50	2.00
हरी खाद	26.00	7.30	17.80

स्रोतः वोहरा एवं मुनेठा (2017) मृदा एवं जल संरक्षिका : 71-73.

6. **फसल चक्रीकरणः-** विभिन्न फसलों को किसी निश्चित क्षेत्र पर एक निश्चित क्रम से किसी निश्चित समय में बोने को फसल चक्रीकरण कहते हैं। इसका उद्देश्य पौधों के पोषक तत्वों का सदुपयोग तथा मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में संतुलन स्थापित करना है। फसल चक्र अपनाने से फसल की गुणवत्ता तथा उत्पादकता पर अनुकूल

प्रभाव पड़ता है। फसल चक्र में खाद्यान्न फसलों के साथ दलहनी फसलों को भी उगाना चाहिए। दलहनी फसलें वायुमंडलीय नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण बढ़ाती हैं। जब एक खेत में निरंतर एक ही फसल ली जाती है तो मृदा में रोगजनकों की संख्या में लगातार वृद्धि होती रहती है। इसके साथ ही मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन भी बिगड़ जाता है और मृदा उर्वरता का ह्रास होता है। फसल चक्र अपनाने से कीट-व्याधियों का प्रकोप कम हो जाता है। उचित फसल चक्र अपनाना भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं को संतुलित करता है तथा फसलों में गुणवत्ता एवं पोषकता प्रदान करता है।

7. **फसल आवरण एवं पलवारः-** आवरण फसल का उपयोग उन फसलों में किया जाता है जिनकी दो पंक्तियों के बीच काफी खाली जगह होती है जो वर्षा ऋतु में मृदा अपरदन और पोषक तत्व क्षरण को बढावा देती हैं। इस खाली जगह में कोई कम ऊँचाई एवं उथली जड़ों वाली दलहनी प्रजाति की खेती करते हैं, जो खाली जगह पर आवरण बना कर मृदा संरक्षण के साथ-साथ पोषक-तत्व क्षरण को भी नियंत्रित करती है। जबकि पलवार में फसलों के अवशेष, पुआल, भूसी व सूखी पत्तियों का उपयोग खाली स्थान को ढ़कने में किया जाता है, जो खाली जगह में आवरण बना कर मृदा अपरदन एवं पोषक-तत्व क्षरण को नियंत्रित करती है। मृदा आवरण विभिन्न चीजों जैसे गोबर खाद, पुआल, सूखी घास, प्लास्टिक पॉलिथीन से किया जा सकता है। कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है क्योंकि ये धीरे-धीरे विघटित होते हैं तथा मृदा में पोषक तत्वों को बढाते हैं।

8. **फसल अवशेष प्रबन्धनः-** साधारणतः किसान फसल अवशेषों के योगदान को नजरअंदाज कर देते हैं। कृषि में आधुनिक मशीनीकरण और बढ़ती उत्पादकता की वजह से फसल अवशेषों की अत्यधिक मात्रा उत्पादित होती जा रही है। फसल कटाई उपरान्त दाने निकलने के बाद प्रायः किसान फसल अवशेषों को जला देते हैं। फसल अवशेषों को जलाये जाने से निकलने वाले धुएँ से पर्यावरण प्रदूषण तो बढ़ता ही है साथ ही धुएँ की वजह से हृदय व फेफड़े से जुड़ी बीमारियाँ बढ़ती हैं। धुएँ में कार्बन-डाईऑक्साइड व कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी हजारों हानिकारक गैसें मिली होती हैं जिससे मानव जाति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। फसल अवशेषों में खलियाँ, पुआल, भूसा व फार्म अवशिष्ट प्रमुख हैं। फसल अवशेष पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने के साथ-मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक क्रियाओं पर भी अनुकूल प्रभाव डालते हैं। फसल अवशेष क्षारीय मृदाओं के पी.एच. मान को कम करके उन्हें भी खेती योग्य बनाने में सहायता करती हैं। (तालिका-2) में दर्शाया गया है।

तालिका 2: फसल अवशेषों में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा (प्रतिशत में)

फसल अवशेष	नत्रजन (%)	फॉस्फोरस (%)	पोटाश (%)
धान	0.58	0.23	1.66
गेंहूँ	0.49	0.25	1.28
ज्वार	0.40	0.23	2.17
बाजरा	0.65	0.75	2.50
मक्का	0.59	0.31	1.31
अरहर	1.10	0.58	1.28
चना	1.19	0.18	1.28
उर्द	0.91	0.10	0.22
अन्य दालें	1.60	0.15	2.00

स्रोतः वीरेंद्र कुमार व वाई. एस. शिवे (2017) खाद पत्रिका (2) : 16-22.

फसल अवशेषों को जलाने की समस्या से निपटने के लिए कृषि वैज्ञानिकों ने अनेक उपाय किये हैं जिनमें वर्मी कम्पोस्ट महत्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया में फसल अवशेषों तथा गोबर का सदुपयोग करके वर्मी कम्पोस्ट तैयार किया जाता है। फसल अवशेषों से कम्पोस्ट खाद बनाकर खेतों में डाला जाता है। फसल अवशेषों के उचित प्रबन्धन हेतु जरूरी है कि फसल अवशेषों को खेतों में जलाने की अपेक्षा उनसे कम्पोस्ट तैयार करके खेतों में प्रयोग करें।

9. **फसल प्रणाली में दलहनी फसलों का समावेशः** भारत में दलहनी फसलें 29.9 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर उगाई जाती है जो विश्व का लगभग 34 प्रतिशत है। दलहनी फसलों में वायुमंडलीय नत्रजन को पौधों की जड़ों में स्थिरीकरण करने की अद्वितीय प्राकृतिक क्षमता पाई जाती है जिससे मृदा की उर्वरता बढ़ती है तथा फसल प्रणाली टिकाऊ होती है। दलहनी फसलों को विभिन्न कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में एकल फसल, आवरण फसल, मिश्रित फसल, अंतर-फसल प्रणाली, फसल चक्र आदि के रूप में विभिन्न फसल प्रणालियों में उगाया जाता है।

दलहनी फसलें मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने एवं दीर्घकालीन टिकाऊ कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दलहनी फसलें जैविक नत्रजन स्थिरीकरण, जड़ों की वृद्धि, पत्तियों के गिरने, गहरी जड़ प्रणाली, पोषक तत्वों के जमाव, मृदा का संरक्षण और सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि करने के माध्यम से मृदा में जीवांश पदार्थों की मात्रा बढ़ाती है जिसके फलस्वरूप मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में गुणात्मक परिवर्तन होता है। मृदा में लगभग 40-60 कि.ग्रा. नत्रजन की वृद्धि होती है जिससे दलहनी फसलों के बाद बोई जाने वाली अनाज की फसलों की उत्पादकता बढ़ जाती है। दलहनी फसलों के समावेश से खेती की लागत काफी

कम हो जाती है और प्रति रुपया निवेश संसाधन उपयोग क्षमता बढ़ जाती है। अध्ययनों में यह पाया गया है कि दलहनी फसलों को फसल प्रणाली में शामिल करने से आगामी अनाज वाली फसलों में काफी मात्रा में नत्रजन की आपूर्ति हो जाती है। वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के परिदृश्य में दलहनी फसलें बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि सिंचित और शुष्क फसल प्रणाली में दलहनी फसलों को प्राथमिकता दी जाये।

''सिंचाई जल का समुचित प्रबन्धन''

हमारे देश में परम्परागत तरीके से सिंचाई के कारण खेत में पानी पहुँचाने से पूर्व ही बिना किसी उपयोग के 25-50 प्रतिशत तक नष्ट हो जाता है। फसलों की सिंचाई के लिए आमतौर पर प्रवाह सिंचाई विधि अपनाई जाती है जो पूर्णतः अवैज्ञानिक और त्रुटिपूर्ण है। इस विधि में सिंचाई करने से 50-70 प्रतिशत पानी वाष्प बनकर तथा अन्तः स्रवन द्वारा व्यर्थ हो जाता है। आज कृषि वैज्ञानिक अधिकतर फसलों में ऐसी प्रजतियाँ विकसित कर चुके हैं जो कम पानी में भी अच्छा उत्पादन दे सकती हैं। ऐसी प्रजातियों को बढ़ावा देकर सिंचाई जल का समुचित प्रबंधन कर सकते हैं। इसके अलावा सिंचाई की आधुनिक प्रणालियों जैसे स्प्रिंकलर (बौछार) एवं ड्रिप (टपक) विधियों का प्रयोग कर शत-प्रतिशत पानी का उपयोग कर सकते हैं। देश में 65 प्रतिशत असिंचित भूमि है, ऐसी परिस्थिति में उपलब्ध जल का सुनियोजित ढंग से उपयोग करना अति आवश्यक है।

1. **स्प्रिंकलर (फव्वारा) विधिः** इस विधि में फव्वारे के माध्यम से फसलों पर पानी बरसा कर पौधों और खेत को नाम किया जाता है। इसके लिए पूरे खेत में निश्चित दूरी व ऊँचाई पर पाइपलाइन लगाई जाती है। इन पाइपों पर आवश्यकतानुसार जगह-जगह फव्वारे लगाये जाते हैं। पाइपलाइन में अत्यधिक दबाव पर पानी प्रवाहित किया जाता है जिससे नोजल के माध्यम से जल की बूँदे वर्षा के रूप में निकलकर पौधों की सिंचाई करती हैं। यह विधि सभी प्रकार की ऊँची-नीची, ढालदार, ऊसर, बलुई, कटाव वाली भूमियों के लिए उपयुक्त होती है। इस विधि से सिंचाई करने से फसलों पर एक समान जल का वितरण होता है। स्प्रिंकलर विधि से जल की बचत व पैदावार में वृद्धि होती है। इससे जल का उपयोग नियंत्रित रहता है, जिससे फसल को जल की आवश्यक मात्रा लगातार उपलब्ध होती रहती है।
2. **ड्रिप (बूँद-बूँद) विधिः** इस विधि में सिंचाई के जल को पौधों के जड़ क्षेत्र में नियंत्रित दशा में बूँद-बूँद करके पहुँचाया जाता है। सिंचाई की इस विधि में उबड़-खाबड़, बलुई और ऊसर आदि भूमियों में पी.वी.सी. की पाइपलाइन को पूरे खेत में बिछाया जाता है और जरूरत अनुसार जगह जगह पर नोजल लगाये जाते हैं। इन पाईपों में 2.5 कि.ग्रा. प्रतिवर्ग सेमी. के दाब से जल छोड़ा जाता है जो नोजल से निकलकर भूमि को धीरे धीरे नम करता रहता है। इससे सिंचाई के जल की बचत तथा अधिक क्षेत्रफल की सिंचाई हो जाती है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली में जल को पौधों की आवश्यकतानुसार बूँद-बूँद करके सीधे पौधों की जड़ों के पास दिया जाता है। जिससे जल की एक-एक बूँद का समुचित उपयोग होता है। ड्रिप सिंचाई में प्रवाही सिंचाई की तुलना में कम सिंचाई जल की आवश्यकता होती है। परम्परागत सिंचाई की तुलना में ड्रिप सिंचाई प्रणाली अपनाने से उपज में 44 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी संभव है। फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ-साथ उपज की गुणवत्ता भी सुनिश्चित की जा सकती है।

खरपतवार प्रबन्धन

खरीफ, रबी और जायद के मौसम में विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती की जाती है लेकिन उनकी उत्पादकता काफी कम है। उत्पादकता को प्रभावित करने वाले वातावरणीय कारकों में वर्षा जल, तापक्रम, आर्द्रता, प्रकाश तथा जैविक कारकों में कीट, रोग व खरपतवार प्रमुख हैं। जैविक कारकों में से खरपतवारों द्वारा फसल को सर्वाधिक नुकसान होता है। खरपतवारों की उपस्थिति फसल की उपज को लगभग 37% तक कम कर देती है। फसल से अनुकूलतम उपज प्राप्त करने के लिए खरपतवारों पर नियंत्रण कर उनको समय से नष्ट करना जरूरी है। खरपतवार फसल उत्पादकता घटाने के साथ ही उसकी गुणवत्ता में भी कमी लाता है। सामान्यतः विभिन्न फसलों की पैदावार में खरपतवारों द्वारा कमी कई कारकों पर आधारित होती है। विभिन्न शोधों/परीक्षणों से ज्ञात है कि खरपतवार रबी फसलों की पैदावार में 15-60 प्रतिशत तक हानि पहुँचा सकते हैं। खेत में खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्वों, हवा, पानी और

तालिका : खरपतवारों द्वारा पैदावार की कमी एवं फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रांतिक समय

फसलें	उपज में संभावित कमी (प्रतिशत)	खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय
(दिनों में)		
गेंहूँ	20–40	30–45
जौ	20–30	15–45
चना	15–25	30–60
मटर	20–30	30–45
मसूर	20–30	30–60
सरसों	15–40	15–30
अलसी	20–40	30–40
गन्ना	20–30	30–120
आलू	30–60	20–40
उर्द–मूँग	30–35	15–20

स्रोतः भोलाराम कुड़ी, सुमित्रा देवी बम्बोरिया (2020) खाद पत्रिका (2): 34-38.

प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं जिससे फसल की उपज और गुणवत्ता में गिरावट आती है। यह भी देखा गया है कि जहाँ खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा होता है वहाँ कीटों एवं बीमारियों का आक्रमण भी बढ़ जाता है। खरपतवारों द्वारा पैदावार की कमी एवं फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रांतिक समय का विवरण तालिका-में दिया गया है।

खरपतवार प्रबन्धन की विधियाँ

खरपतवार प्रबन्धन का उद्देश्य खरपतवारों की वृद्धि रोकना, खरपतवार तथा फसलों के बीच प्रतिस्पर्धा को कम करना, खरपतवार को बीज बनने से रोकना तथा बीजों व अन्य वानस्पतिक भागों का प्रसारण रोकना तथा उनका नियंत्रण करना है। खरपतवारों से फसल की उपज में होने वाले नुकसान को कम करने के लिए कर्षण क्रियाएँ, यांत्रिक तथा जैविक विधियों का उपयोग किया जा सकता है।

1. **निवारण विधिः** इस विधि में वे सभी क्रियाएँ शामिल हैं जिनके द्वारा खेती में खरपतवारों के प्रवेश को रोका जा सकता है। जैसे- प्रमाणित बीजों का उपयोग, अच्छी सड़ी गोबर एवं कम्पोस्ट खाद का उपयोग सिंचाई की नालियों की सफाई, खेती की तैयारी एवं बुवाई में उपयोग किये जाने वाले यंत्रों के उपयोग से पूर्व अच्छी तरह से सफाई इत्यादि।
2. **सस्य क्रियाएँः** इसमें कम लागत एवं पर्यावरण अनुकूल तरीके जैसे- फसल पलवार, फसल चक्र, उचित पौध आबादी, अंतः फसल, संरक्षित जुताई इत्यादि तरीके खरपतवारों के नियंत्रण हेतु अपनाये जा सकते हैं। खेत में ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई कर खेत को 20-25 दिन के लिए खुला छोड़ देने से अधिक तापक्रम के कारण काफी खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। फसलों की बुवाई छिटकवां विधि की बजाय कतार विधि से करने में निराई-गुड़ाई में सुगमता होती है तथा उपज अधिक प्राप्त होती है।
3. **कृषि यांत्रिक विधिः** इस विधि हेतु खरपतवारनाशी यंत्र उपलब्ध हैं, जैसेः- हस्तचालित निराई उपकरण, खुरपी, हस्तचालित हो, कुदाली, ग्रवर निराई उपकरण, खूँटीनुमा शुष्क भूमि हेतु निराई उपकरण, एकल पहिया हो, जुड़वाँ पहिया हो, पंक्ति चालित झाड़ूनुमा जुताई यंत्र इत्यादि।

फसल की प्रारंभिक अवस्था में बुवाई के 15-45 दिन के मध्य फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना जरूरी है। सामान्यतया दो निराई-गुड़ाई, पहली 20-25 दिन व दूसरी 45 दिन बाद करने से खरपतवारों का नियंत्रण प्रभावी ढंग से होता है। खरपतवारों को उनमें फूल व बीज बनने से पहले उखाड़ा जाना जरूरी है। फसल की बुवाई से पूर्व जुताई भी खरपतवारों की संख्या को कम करती है। इसके साथ ही हानिकारक कीड़े व सूत्रकृमि भी नष्ट हो जाते हैं।

कीट एवं रोग नियंत्रण

सामान्यतः फसलें हानिकारक कीटों, फफूंद, जीवाणु और सूत्रकृमि से प्रभवित होती हैं। इनको नियंत्रित करने के लिए एकीकृत रोग-कीट प्रबन्धन को अपनाना जरूरी है। इसमें प्रमुख रूप से प्रतिरोधी प्रजातियाँ लगाना, रोगमुक्त बीज का उपयोग, क्षतिग्रस्त और खराब बीज को लगाने से पहले अलग करना, कीटों की निगरानी तथा नियंत्रण करने के लिए कनेर पीला जल प्रपंच या चिपचिपा प्रपंच, रस चूसने वाले कीटों जैसे- सफेद मक्खी, माहू एवं थ्रिप्स आदि के लिए उपयुक्त हैं। इसके साथ ही उड़ने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए लाइट ट्रैप का प्रयोग भी प्रभावी है। फिरोमोन ट्रैप का प्रयोग कीटों की आबादी को नियंत्रित करने में बहुत सहायक होता है। इस ट्रैप से भीनी-भीनी खुशबू निकलती है जो नर कीटों को भ्रमित करके अपनी ओर आकर्षित करती है, जिसके कारण वे इस ट्रैप में प्रवेश कर जाते हैं और मर जाते हैं। जैविक कीटनाशकों के माध्यम से पूरे वातावरण में तो सुधार होगा ही, साथ ही फसल एवं मिट्टी का स्वास्थ्य भी बेहतर होगा। जैविक खेती में कई जैविक कीटनाशकों का प्रयोग किया जा सकता है।

1. **नीम की पत्तियाँः** एक एकड़ जमीन में छिडकाव के लिए 10-12 कि.ग्रा. पत्तियाँ लगती हैं। इसको 10 लीटर पानी में 1 किलोग्राम पत्ती का घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए। इस घोल से माहू, सुंडी इत्यादि को नियंत्रित किया जा सकता है।
2. **नीम की गिरीः** 1 किलोग्राम नीम की गिरी को अच्छे से कूटें और कुटी हुई गिरी को कपडे में बाँध कर 20 लीटर पानी में भिगो दें तथा अगले दिन सुबह इसी घोल का फसलों पर छिडकाव करें।
3. **नीम का तेलः** पट्टी खाने या रस चूसने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए नीम का तेल 2.0-3.0 मिग्रा./लीटर के हिसाब से फसल के अनुसार छिड़काव उपयोगी पाया गया है। यह मिश्रण माहू, सफेद मक्खी तथा थ्रिप्स के लिए उपयोगी है।
4. **नीम खली का घोलः** यह एक काढ़ा है जो नीम खली को कुचल कर बनाया जाता है इसे नीम खली और स्थानीय गौमूत्र को मिलकर तैयार किया जाता है।
5. **गौमूत्रः** इसमें कुचले हुए नीम के पत्ते, गाय के गोबर, स्थानीय गौमूत्र और पानी से बना एक मिश्रित घोल है। इन जैविक

कीटनाशकों से सिर्फ कीट और रोगों का नाश नहीं होता है, बल्कि हमारी मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार होने के कारण फसल और बेहतर हो जाती है। फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए फसलों का जैविक एवं अजैविक कारकों से बचाव अत्यंत आवश्यक है। समेकित रोग व कीट प्रबन्धन जिसमें रोगरोधी प्रजातियों के स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कर्षण क्रियाओं में बदलाव, कवकनाशी तथा जीवनाशी तत्वों का प्रयोग सम्मिलित है, उत्पादकता को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैविक कृषि में नाशी कीटों के नियंत्रण हेतु विभिन्न तरीकों का प्रयोग करके इन नाशी कीटों की संख्या को कम किया जा सकता है जिससे इन नाशी कीटों द्वारा हमारी कृषि फसलों को आर्थिक रूप से पहुँचाए जाने वाले नुकसान में कमी लाई जा सके। इन नाशी कीटों के प्रबन्धन हेतु इनकी प्रजनन क्रिया, खाने की प्रक्रिया, रहने तथा फैलाव के तरीकों में अवरोध पैदा किया जाता है। नीम, सरसों व करंज की खली को खेतों में सुधारक के तौर पर मिलाने से भूमि में रहने वाले सूत्रकृमियों के प्रकोप में कमी आती है। इसी प्रकार अरण्डी की खली के प्रयोग से दीमक के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

जैविक कृषि में फसल पालन से लेकर पशुपालन से लेकर बागवानी तक खेत पर मानार्थ गतिविधियों के साथ कई पहलू शामिल हैं। जैविक खेती प्रणाली भारत के मूल में हैं क्योंकि परंपरागत रूप से फसलें और पशुधन एक साथ पाले जाते हैं और आज भी, 85% से अधिक कृषि परिवारों में मौजूद हैं। यह अनुमान है कि 32.41 मिलियन टन की कुल पोषक क्षमता वाले विभिन्न जैविक संसाधन 2025 में उपयोग के लिए उपलब्ध होंगे। चूंकि, अंतर/मिश्रित फसल (जिसे ''जैविक की ओर'' भी माना जाता है) सहित फसल प्रबंधन के एकीकृत दृष्टिकोण से वृद्धि हुई है। सभी महंगे निवेशों विशेषकर उर्वरकों और पानी की दक्षता का उपयोग करने के लिए, खाद्य टोकरी में बड़े हिस्से का योगदान करने वाले राज्यों में एकीकृत फसल प्रबंधन को अपनाना उचित होगा। वर्तमान में, भारत में, जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं तैयार और कार्यान्वित की गई हैं, जिसके परिणामस्वरूप वर्षों में क्षेत्र और निर्यात में कई गुना वृद्धि हुई है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना है।

कृषि का इतिहास - प्राकृतिक ज्ञान की कसौटी

वी. के. सचन, उप-कृषि निदेशक शोध, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश सरकार।
E-mail: sachanjhansi@gmail.com

प्राचीन धर्म ग्रन्थों जैसे वेदों, पुराणों एवं उपनिषदों की रचना के पीछे का मकसद केवल इतना था कि मनुष्य इस बात को समझ सके कि इस भूमंडल पर दिखने वाली प्रत्येक जड़ एवं चेतन जगत की इकाईयों का वैभव इस धरती पर निरंतरता बना रहे। क्योंकि, प्रकृति के वैभव के बिना इस पृथ्वी पर मानव सभ्यता की निरंतरता सम्भव नहीं है। हमारे पूर्वज कहते थे कि ''दाने दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम''। हमारे पूर्वजों ने स्पष्ट किया है कि इस पृथ्वी पर उगने वाली समस्त प्रकार की वनस्पतियों पर पृथ्वी पर रहने वाले समस्त जीवों का अधिकार है। क्योंकि पृथ्वी पर उगने वाली नाना प्रकार की वनस्पतियों को भूमि में उगने, उनके बढ़ने, फूलने एवं फलने तक अनेक जीव जंतु अनेक प्रयास करते है। खेतों की उर्वरता को सही बनाए रखने के लिए केंचुएं का बहुत बड़ा योगदान है। परपरागित फसलों में परागण की क्रिया को सम्पन्न करने में तितली एवं मधुमक्खी का बहुत बड़ा योगदान है। फसलों को कीटों से बचाने के लिए चिड़ियों का बहुत बड़ा योगदान है।

फसलों को रोगों से बचाने के लिए भूमि में पाए जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवों का बहुत बड़ा योगदान है। हमें मालूम है की खेत मे पड़े फसलों के अवशेष को समय से सड़ाने में सूक्ष्म जीवों की बहुत बड़ी भूमिका होती है। परंतु आधुनिक रसायन आधारित कृषि में हम रसायनिक उर्वरकों एवं फसल सुरक्षा रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग करके मेंढक, केंचुएं, तितलियों, मधुमक्खी, चिड़ियों एवं सूक्ष्म जीवों को नष्ट करते चले जा रहे हैं। शायद इसीलिए वर्तमान समय में कृषि उत्पादन में कुछ ऐसी विसंगतियां उत्पन्न हो रही हैं जिनका समाधान आधुनिक कृषि विज्ञान के पास नहीं है किंतु जब हम समस्याओं का समाधान प्रकृति के पास खोजने का प्रयास करते हैं तो मुझे समाधान अवश्य प्राप्त होते हैं।

धर्म ग्रंथों की मूल भावना भी यही है कि मनुष्य

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु मां कश्चित् दुख भाग भवेत।।

यानि मनुष्य इस पृथ्वी पर दिखने वाले समस्त जीव जंतुओं के सुखी एवं निरोगी जीवन की कामना करे। मनुष्य यह बात भली-भांति जानता है कि परमपिता परमात्मा ने 84 लाख योनियों की रचना के बाद मनुष्य योनि की रचना की थी। मनुष्य यह भी जानता है कि वह इस पृथ्वी पर परमात्मा की सबसे सुंदर और अंतिम रचना है। परंतु वर्तमान युग में मनुष्य इस विषय पर विचार नहीं करता है कि वह इस पृथ्वी पर अन्य जीव जंतुओं में सबसे सुंदर और अंतिम क्यों है हमारे धर्म ग्रंथ केवल यही शिक्षा देते हैं कि मनुष्य इस बात को समझें कि वह इस पृथ्वी पर सबसे सुंदर और अंतिम क्यों है। धर्म ग्रंथों की रचना के पीछे का मकसद यह कदापि नहीं है कि धर्म ग्रंथों को पढ़कर मनुष्य को कोई परीक्षा देकर पास होना है अथवा धर्म ग्रंथ कोई सामान्य ज्ञान के ग्रंथ नहीं है अपितु धर्म ग्रंथ मानव जीवन को मनुष्यता के शिखर पर ले जाने के लिए लिखे गए हैं ताकि वह अपने वर्तमान को एवं भविष्य को आगे ले जा सके।

पृथ्वी पर पायी जाने वाली वनस्पतियों एवं जलाशयों में रहने वाले जलचरों, नभ में रहने वाले नभचरों, पृथ्वी में रहने वाले थलचरों का मनुष्य के जीवन से क्या सम्बन्ध है एवं भूमि की उर्वरता का, जलशयों में भरे पानी का एवं पेड़ों का मनुष्य के जीवन में क्या योगदान है, यह बात मनुष्य को स्पष्ट रूप से समझनी पड़ेगी तथा मनुष्य का इन सभी के प्रति क्या कर्तव्य है, मनुष्य को वह कर्तव्य निभाने पड़ेंगे। अन्यथा फिर मनुष्य के धर्म ग्रन्थ पढ़ने, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर जाकर पूजा करने अथवा किसी धार्मिक अनुष्ठान को करने का कोई मतलब नहीं है। जब तक मनुष्य प्रकृति के विज्ञान को समझता रहा और प्रकृति के साथ परस्परता में मिलकर चलता रहा तब तक उसके जीवन में दुःख कम एवं सुख अधिक थे। किन्तु जब से मनुष्य ने भौतिक संसाधनों के पीछे चलना प्रारम्भ किया तब से उसके जीवन में सुख बचे ही नहीं। हमारे गाँव के घर कच्ची मिट्टी से बनते थे और इसी बहाने जलाशयों को ठीक बनाये रखते थे, वर्षा का पानी जलशयों में एकत्र होता था और कुओं में 30 से 40 फ़ीट पर पानी मिल जाता था। गाँव के आस पास बाग बगीचे थे, खेत की मजबूत मेड़ें थी, मेड़ों पर पेड़ थे, पेड़ इसलिए थे कि घर बनाने के लिए, चारपाई बनाने के लिए, बैलगाड़ी के लिए, खूंटा गाड़ने के लिए लकड़ी की जरूरतें थी।

आज डीप बोरिंग के कारण जलाशय की उपयोगिता गैस सिलेंडर के कारण जलाऊ ईंधन की उपयोगिता समझ में नहीं आती है। कृषि हमारी प्राचीन संस्कृति है वास्तव में कृषि दर्शनशास्त्र का विषय है अर्थशास्त्र का नहीं। जब तक हमारे पूर्वज कृषि को दर्शनशास्त्र समझते रहे उनके चेहरे पर मुस्कान बनी रहे परंतु जब से हमने कृषि को अर्थशास्त्र का विषय मान लिया तब से हमारे जीवन में निराशा के भाव आने लगे। मनुष्य प्रकृति के व्यवस्था के साथ व्यवस्था के साथ मिलकर परस्परता में कैसे जिए ताकि इस

पृथ्वी में अपना जीवन इस प्रकार जीना है कि जड़ एवं चेतन जगत की इकाईयों का वैभव निरंतर कायम रहे। आधुनिक युग के मनुष्य ने धर्म पूजा का अर्थ नहीं समझा और केवल परंपराओं के निर्वहन में उलझ गया यदि हमने परंपराओं को मकसद को ठीक से नहीं जाना तो परंपराओं के निभाने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। जब कृषि क्षेत्र में हम देखते हैं तो पाते हैं कि आज देश की भूमि में जीवांश कार्बन की औसत मात्रा घटकर 0.30 बची है जबकि कृषि योग भूमियों में जीवांश कार्बन की मात्रा 1 से अधिक होनी चाहिए। धरती का 33 हिस्सा हरे भरे वृक्षों से ढ़का हुआ होना चाहिए परंतु आज देश की मात्र 7 भूमियों में ही वृक्ष बचे है। जब हम भूगर्भ जल की बात करते हैं तो पाते हैं कि आज के साथ 70 साल देश के अधिकांश भागों में 40 से 50 फुट की गहराई पर पानी मिल जाया करता था परंतु आज देश के 20 तराई हिस्से को छोड़कर 80 क्षेत्र में पानी 200 फुट से अधिक नीचे चला गया है। 1950 के दशक में देश के गाँवों में कुल भूमि के क्षेत्रफल के 4 प्रतिशत क्षेत्र में औसत जलाशय हुआ करते थे जबकि आज मात्र 0.7 प्रतिशत क्षेत्रफल में ही जलाशय बचे है जबकि 5 प्रतिशत भू-भाग पर जलाशय होने चाहिए।

विज्ञान का जानकार मनुष्य जब प्रकृति के वैभव एवं प्रकृति की व्यवस्था को नजर अंदाज करने लगता है उसका जीवन कष्ट मे हो जाता है। आधुनिक कृषि विज्ञान के युग मे हम ट्रेक्टर से कृषि करने लगे जिसके कारण गौवंश की महत्ता खत्म हो गयी और गौवंश के अस्तित्व पर संकट के बादल मंडराने लगे साथ ही गाँव के भूमि हीन कृषक परिवार बेरोजगार हो गए। जब से फसलों के उत्पादन में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ और उर्वरकों पर अनुदान मिलने लगा किसान गोबर की खाद को भूल गया और भूमि का जीवांश कार्बन घट गया। फसलों को कीट, व्याधि एवं खरपतवारों से बचाने के लिए जब से कीटनाशी, फफूँदनाशी, खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ तब से प्रकृति के अनेक जीव जंतु एवं भूमि के लाभ दायक सूक्ष्म जीव नष्ट हो गए तथा रसायनो के अंश भोजन, पानी एवं हवा घुल गए और मनुष्य शरीर मे नाना प्रकार की लाइलाज बीमारियाँ बढ़ गयी। खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने के लिए नीतियों ने सिंचाई साधनों का जैसे जैसे विस्तार किया वैसे वैसे किसान परम्परागत फसलों को छोड़ता गया और नगदी फसलों जैसे गेंहूँ, धान, गन्ना, आलू, एवं सब्जियों का क्षेत्रफल बढ़ाता गया जिसके लिए उसने भूमिगत जल का दोहन किया और आज पीने के पानी का संकट खड़ा हो गया।

आज हम किसान से परम्परागत कृषि की ओर लौटने का अनुरोध करते है तथा उसे समझा रहे है कि रसायनिक उर्वरकों एवं फसल सुरक्षा रसायनो से प्रकृति एवं मानव स्वास्थ्य क्षति की ही रही है। बात अपनी जगह सही है किंतु प्रश्न है कि नीतियां रसायनिक उर्वरकों पर भारी भरकम अनुदान दे रही है, फसल सुरक्षा रसायन मानव सभ्यता के दुश्मन है यह जानते हुए इनके उत्पादन करने तथा इन्हें बेचने के लिए लाइसेंस दे रही है, भूगर्भ जल स्तर खत्म होने को है परन्तु बोरिंग कराकर भूगर्भ जल का दोहन करने पर कोई रणनीति नहीं है। आज के सत्तर वर्ष पूर्व गाँव एवं कृषि की सच्चाई यह थी कि गाँव में कोई भी भूमिहीन परिवार बेरोजगार नहीं था और गाँव का कोई भी किसान खेती में घाटा होने की वजह से आत्महत्या नहीं करता था यही नहीं गाँव में ऐसे अनेकों उदाहरण मिल जाएंगे कि लोग सरकारी नौकरी करना पसंद नहीं करते थे।

आज आवश्यकता है कि सत्तर वर्ष पूर्व कृषि की उस हकीकत को समझना पड़ेगा जिससे कृषि को उन्नत व्यवसाय कहा जाता था। अब प्राकृतिक कृषि की समग्रता को समझे बिना गाय की पूँछ पकड़ कर वैतरणी पार करने की जा रही।

कवायद से प्राकृतिक कृषि सम्भव नहीं है। अगर वास्तव में कृषि की निरंतरता को बनाये रखना है, फसलों की बढ़ती उत्पादन लागत को हटाकर किसान की आय बढ़ानी है, भोजन के स्वाद की बढ़ाना है, भोजन में मिले रसायनों को खत्म करना है तो फिर एक बार प्रकृति के वैभव को ठीक करने की दिशा में प्रयास करने की जरूरत है।

भूमि की उर्वरता में सुधार लाने के लिए ट्रेक्टर एवं ट्रेक्टर आधारित कृषि यंत्रों पर एवं रसायनिक उर्वरको पर दिए जाने वाले अनुदान को खत्म करना होगा साथ ही बैल आधारित कृषि करने वाले किसान को उसकी उपज का सही मूल्य दिलाना होगा। सीधी सी बात है जो निवेश प्रकृति के वैभव को नष्ट अथवा खराब करते है उन पर कोई अनुदान नहीं दिया जाएगा तथा उनके निर्माण एवं बेचने पर प्रतिबंध होगा। इस विषय पर एक वर्ग विरोध करता है उसकी दलील होती है कि इससे खाद्यान्न उत्पादन कम हो जाएगा और देश फिर से भूखमरी की कगार पर खड़ा हो जाएगा। लेकिन यह बात सत्य नहीं है हम अपने कृषि इतिहास को 1950 के दशक से प्रारम्भ करते है हम कृषि के इतिहास को 1000 वर्ष पूर्व जाकर क्यों नहीं देखते। चलो प्राकृतिक कृषि के विरोधियों की बात मान लेते है किंतु प्राकृतिक कृषि के विरोधी यह बता सकते है कि भूमि में बीज का उगना कब बन्द हो जायेगा अथवा भूगर्भ का पानी कब समाप्त हो जाएगा या फिर? किन्तु यह तय मानिए कि यदि समय रहते हमने रसायनिक कृषि को बन्द नहीं किया तो आधुनिक कृषि के दुष्परिणाम आने वाली पीढ़ियों को भुगतने ही पड़ेंगे। हमारे वेद और पुराण यही सिखाते आए हैं कि आप इस पृथ्वी के अंतिम व्यक्ति नहीं है अपितु आपके मरने के बाद प्रकृति के इसी वैभव में आपकी आने वाली पीढ़ियों को भी जीवन जीना है।

प्राकृतिक खेती हेतु वैदिक सिद्धांत एवं उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण

सुमित नारायण[1], सुजीत चक्रबर्ती[2], आस्था[3] एवं अनिल कुमार[1]

1: शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर)

2: प्रकृत कृषि तंत्र एलएलपी, पुणे (महाराष्ट्र)

3: सैम हिगिनबोटोम कृषि विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, प्रयागराज, (उ.प्र.)

सारांश

वैश्विक स्तर पर **''ग्लोबल वार्मिंग''** से होने वाले जलवायु परिवर्तन का नकारात्मक असर सर्वाधिक रूप से कृषक बंधु अनुभव कर रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप अति-वृष्टि के कारण बाढ़ की स्थिति अथवा अल्प-वृष्टि के फलस्वरूप सूखा पड़ना; दोनों ही परिस्थिति कृषक बंधुओं के लिए नुकसानदायक है। पृथ्वी पर **ऋतु-मौसम-जलवायु** परिवर्तन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जो कि निरंतर सृष्टि के आरम्भ से निरंतर नियमानुसार हो चला आ रहा है जिसका निर्धारण खगोलीय घटनाओं के अनुसार होता है। ब्रम्हांड में **ग्रह-राशि-नक्षत्र** के समयानुसार, विभिन्न संयोग से उत्पन्न शक्ति लौकिक ऊर्जा के रूप में पृथ्वी पर उत्सर्जित होने से जलवायु में परिवर्तन होता है। वैदिक सिद्धांतों पर आधारित भारतीय पंचांग में **ग्रह-राशि-नक्षत्र** के गति एवं संयोग के आधार पर **ऋतु-मौसम-जलवायु** में होने वाले परिवर्तन की प्राकृतिक प्रक्रिया के पीछे के वैज्ञानिक आधार की व्याख्या की गई है। वेदों में सौर मंडल में से 'नव-ग्रह' को पृथ्वी पर पहुँचने वाली लौकिक शक्तियों के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। प्रकृति में ऋतु मौसम जलवायु की घटना आकस्मिक नहीं होती है बल्कि इसके पीछे खगोलीय पिंडों के विशिष्ट संयोग से उत्पन्न शक्तियों के कारण पृथ्वी के वातावरण में होने वाले बदलाव का परिणाम मात्र है। पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों के व्यवहार का गहन अध्ययन करने से **ऋतु-मौसम-जलवायु** के बारे में पूर्वानुमान को समझने का प्रयास किया जा सकता है। मनुष्य द्वारा विकास के बहाने पर्यावरण में किए गए हस्तक्षेप का परिणाम आज **''ग्लोबल वार्मिंग''** से होने वाले जलवायु परिवर्तन के रूप में दिखाई पड़ रहा है।

मुख्य लेख

वैश्विक स्तर पर **''ग्लोबल वार्मिंग''** से होने वाले जलवायु परिवर्तन का नकारात्मक असर सर्वाधिक रूप से कृषक बंधु अनुभव कर रहे हैं। इसका परिणाम कही पर अति-वृष्टि के कारण बाढ़ की स्थिति पैदा होना तो किसी दूसरे स्थान पर अल्प-वृष्टि के फलस्वरूप सूखा पड़ना, दोनों ही परिस्थिति में फसल खेत में ही खराब हो जाती है। इस कारण अन्न-जल में कमी होने से महंगाई बढ़ने से समाज में कुपोषण तथा भुखमरी जैसे गंभीर समस्याएं मुख्यातः तीसरी दुनिया के देशों में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं। आर्थिक स्थिति से समृद्ध देशों में भी विभिन्न प्रकार के स्वास्थ संबंधी समस्याएं उत्पन्न होने के भी **''ग्लोबल वार्मिंग''** से जोड़ कर देखा जाता है। पृथ्वी पर **ऋतु-मौसम-जलवायु** परिवर्तन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जो कि निरंतर सृष्टि के आरंभ से निरंतर नियमानुसार होता चला आ रहा है, जिसमे मनुष्य का न तो कोई योगदान है और न ही मनुष्य इस प्राकृतिक नियम को बदलने की क्षमता रखता है। परंतु अब यह अवश्य प्रमाणित हो गया है की मनुष्य ने अपने स्वार्थ को साधने के प्रयास में जाने अनजाने में **ऋतु-मौसम-जलवायु** परिवर्तन के नियम में विकार उत्पन्न करता आया है। सफल खेती का मूल मंत्र है **ऋतु-मौसम-जलवायु** का समय पर सटीक अनुमान लगाते हुए फसलों का चयन एवं तदनुसार कृषि कार्य की योजना बना कर परिस्थितिनुसार आयोजन करना।

ऋतु परिवर्तन के अनुसार विश्व को अक्षांश के आधार पर मुख्यतः तीन प्रकार के क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता हैः-

- ***उष्णकटिबंधीय क्षेत्र-*** विषुवत रेखा के उत्तर में कर्क रेखा से दक्षिण में मकर रेखा तक का भूमध्यीय भाग; इस क्षेत्र में मुख्यतः दो प्रकार की ऋतुएं होती है; ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु, जो कि दैनिक नियमनुसार बदलता है। ऊषा काल में मौसम शुष्क एवं शीतल यानि की सुहावन रहता है जो दिन चढ़ने के साथ-साथ तापमान बढ़ कर दोपहर में अधिकतम होता है, इस दौरान मौसम शुष्क एवं गर्म हो जाता है। सूरज ढलने के साथ-साथ सायं काल में आकाश पूर्व दिशा से मेघाच्छादित होने से वर्षा होती है। इस प्रकार उष्णकटिबंधीय क्षेत्र मुख्यतः दो ही ऋतु हैं।
- ***मध्य-अक्षांशीय क्षेत्र-*** कर्क रेखा के उत्तर में एवं मकर रेखा के दक्षिण में यह शीत-प्रधान क्षेत्र, जिसमे वर्ष भर में चार ऋतुएं होती हैं; ग्रीष्म, शरद (पतझड़), शीत एवं बसंत ऋतु। इस क्षेत्र में ऋतुओं में बदलाव का कारण सूर्य के उत्तरायन एवं दक्षिणायन के नियम से संबंधित तथा इस पर आधारित है। सूर्य विषुवत रेखा से मकर रेखा पर जाने के समयकाल में कर्क रेखा के उत्तरी क्षेत्र में शरद ऋतु (पतझड़) से शीत ऋतु एवं पुनः विषुवत रेखा से कर्क रेखा पर जाने के समयकाल में बसंत से ग्रीष्म का यह ऋतु चक्र निरंतर चलता

रहता है। मकर रेखा के दक्षिणी क्षेत्र में इसके ठीक उलट ऋतु चक्र घटित होता है।

- ***आर्कटिक क्षेत्र–*** यह ध्रुवीय क्षेत्र है जहाँ सूर्य की किरणे सदैव तिरछी पड़ने के कारण तापमान शून्य से भी कम एवं पूरा क्षेत्र हिमाच्छादित रहता है। इस क्षेत्र की भी दो ही ऋतुएं यानि ग्रीष्म एवं शीत ऋतु होते हैं। सूर्य के विषुवत रेखा से कर्क रेखा बीच में रहते समय उत्तरी ध्रुव में ग्रीष्म ऋतु तथा विषुवत रेखा से मकर रेखा बीच में रहते समय शीत ऋतु रहता है। दक्षिणी ध्रुव में इसके ठीक उलट ऋतु चक्र घटित होता है। ध्रुवीय क्षेत्रों में दिवस और रात्रि चक्र भी ऋतुओं के अनुसार बदलता है।

जलवायु परिवर्तन के अनुसार विश्व को अक्षांश के आधार पर मुख्यतः पाँच क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है:–

- *उष्णकटिबंधीय क्षेत्र–* विषुवत रेखा से उत्तर एवं दक्षिण में लगभग 15^0 अक्षांश तक यानि पृथ्वी के मध्य भाग में 30^0 का पट्टा, गर्म एवं आद्र जलवायु वाला क्षेत्र है जहाँ वर्ष भर मौसम उमस भरा रहता है।
- *शुष्क क्षेत्र–* उत्तरी गोलार्ध एवं दक्षिण गोलार्ध में 20^0 अक्षांश के दोनों तरफ का क्षेत्र कम वर्षा होने के कारण वर्ष भर सामान्यतः शुष्क रहता है।
- *समशीतोष्ण क्षेत्र–* उत्तरी गोलार्ध एवं दक्षिण गोलार्ध में 40^0 अक्षांश के दोनों तरफ लगभग 5^0 का क्षेत्र कम तापमान होने के कारण वर्ष भर सामान्यतः ठंडा रहता है।
- *महाद्वीपीय क्षेत्र–* उत्तरी गोलार्ध एवं दक्षिण गोलार्ध में 60^0 अक्षांश के दोनों तरफ लगभग 5^0 के क्षेत्र में वर्ष भर सामान्यतः तापमान शून्य से नीचे होने के कारण बर्फ से ढका रहता है।
- *ध्रुवी क्षेत्र–* उत्तरी गोलार्ध एवं दक्षिण गोलार्ध में 80^0 अक्षांश के बाद के क्षेत्र में वर्ष भर पानी जम कर बर्फ के रूप ढका रहता है।

पृथ्वी पर **ऋतु–मौसम–जलवायु** का निर्धारण खगोलीय घटनाओं के अनुसार होता है। ब्रह्माण्ड में **ग्रह–राशि–नक्षत्र** के समयानुसार, विभिन्न संयोग से उत्पन्न शक्ति लौकिक ऊर्जा के रूप में पृथ्वी पर उत्सर्जित होने से जलवायु में परिवर्तन होता है।

प्रकृति में उपस्थित सभी पदार्थ जैसे सभी जीव-प्राणी तथा निर्जीव वस्तुएँ पंच तत्वों द्वारा गठित हैं। अतः खगोलीय पिंड जैसे प्रत्येक **ग्रह–राशि–नक्षत्र** भी पंच तत्वों द्वारा ही गठित हैं परंतु इनमें से किसी विशेष तत्व का प्रभाव अन्य से अधिक होने के कारण ऐसा माना गया है की उक्त वस्तु विशिष्ट तत्व से संबंधित हैं।

ग्रह – राशि – नक्षत्र – तत्व – जलवायु - फसल

पृथ्वी अपने कक्षा में सूर्य की परिक्रमा पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा में करती है जिससे दिवस रात्रि का समय-चक्र निरंतर चलता रहता है। परंतु दिवस रात्रि की अवधि वर्ष भर एक समान नहीं होती है; बल्कि ग्रीष्म ऋतु में दिवस की अवधी 12 घंटे से अधिक तथा शीत ऋतु में 12 घंटे से कम होती है। सूर्य जब विषुवत रेखा पर होता है तब यानि 21 मार्च एवं 21 सितम्बर को दिवस-रात्रि विश्व में सभी स्थानों पर एक समान अर्थात सूर्योदय से सूर्यास्त की अवधि (दिन) एवं सूर्यास्त से सूर्योदय की अवधि (रात्रि) 12 घंटे की होती है।

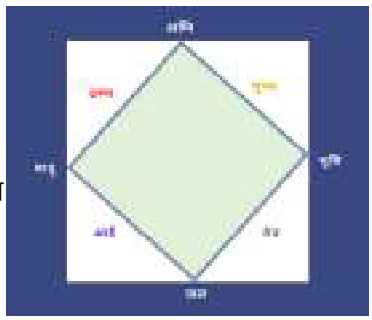

वैदिक सिद्धांतों पर आधारित भारतीय पंचांग में दिवस की अवधि सूर्योदय से सूर्यास्त तक तथा रात्रि की अवधि सूर्यास्त से सूर्योदय तक के समायान्तरल को माना गया है। परंतु मध्याननू दोपहर 12 बजे, जब सूर्य आकाश में शीर्षबिंदु (सिर के ऊपर) तथा मध्यरात्रि में, जब सूर्य हम से, पृथ्वी के विपरीत गोलार्द्ध में मध्याननू का समय है, मध्याननू से ठीक 12 घंटे पश्चात् का समय होता है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर 23^0 झुके होने के कारण ऋतु परिवर्तन की प्रक्रिया होती है। सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में 22 मार्च से 21 जून के समायान्तराल में विषुवत रेखा से कर्क रेखा तक एवं उसके पश्चात् 22 जून से 21 सितम्बर के समायान्तराल में कर्क रेखा से विषुवत रेखा तक भ्रमण करता है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में अक्षांश के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में बसंत ग्रीष्म वर्षा ऋतुएँ आती हैं। इसी प्रकार सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में 2 सितम्बर से 21 दिसम्बर के समयकाल में विषुवत रेखा से मकर रेखा तक एवं उसके पश्चात् 22 दिसम्बर से 21 मार्च के समायान्तराल में पुनः मकर रेखा से विषुवत रेखा तक भ्रमण करता है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में अक्षांश के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में हेमंत-शरद-शीत ऋतुएं आती हैं। परंतु दक्षिणी गोलार्ध में ऋतुएं इसके ठीक विपरीत क्रमानुसार चलती हैं।

वेदों में सौर मंडल में से 'नव-ग्रह' को पृथ्वी पर पहुँचने वाली लौकिक शक्तियों के लिए महत्वपूर्ण माना गया है; जिनमें पृथ्वी

को केंद्र मन कर, सूर्य एवं चंद्र को भी ग्रहों की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार सप्ताह के सात दिनों के नामकरणनुसार सात ग्रह यानि सोम (चंद्र), मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि एवं रवि (सूर्य)। बाकी दो ग्रह राहू एवं केतु काल्पनिक ग्रह हैं। वास्तव में राहू एवं केतु काल्पनिक बिन्दु मात्र हैं परंतु विशेष समय में इन बिदुओं की क्षमता अन्य सात ग्रहों से तुलना समान हो जाता है। यह विसहेस समय तब होते हैं जब चंद्र अपनी कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए पृथ्वी के सूर्य की परिक्रमा करने के कक्षा रेखा को काटता है। ऐसा प्रति माह दो बार होता है। जब चंद्र के उत्तरायन में होते हुए पृथ्वी की कक्षा को काटता है तो उस बिन्दु को 'राहू' एवं दक्षिणायन में होते हुए पृथ्वी की कक्षा को काटने के समय के बिन्दु को 'केतु' वेदों में कहा गया है। चंद्र जब इन बिदुओं पर होतें हैं, उस पल चंद्र की शक्ति निष्क्रिय (शून्य) हो जाति है। चंद्र के शक्ति का शून्य होने की प्रक्रिया एकाएक नहीं होती है, बल्कि जब चंद्र इन बिन्दुओं के समीप आता है तथा इन बिदुओं से दूर जाता है, उससे चार घंटे पहले एवं चार घंटे बाद तक के समय में चंद्र की शक्ति सामान्य से धीर-धीरे क्षीण होते हुए इन बिंदुओं पर शून्य हो जाता है, पुनः धीरे-धीरे बढ़ते हुए सामान्य हो जाता है।

पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करते हुए 12 राशियों तथा 27 नक्षत्रों से गोचर करती है। परंतु हम पृथ्वी पर स्थित हैं, इसलिए पृथ्वी से हमारे लिए ये स्थिति ऐसी प्रतीत होती है कि सूर्य का ही इन बारह राशियों से गोचर कर रहा है। वास्तविक स्थिति भी इसी प्रकार की है क्योंकि लौकिक शक्तियों का पृथ्वी पर सूर्य प्रकाश पुंज के द्वारा ही पहुँचता है।

चंद्र एक माह में पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए 12 राशियों तथा 27 नक्षत्रों से गोचर करता है। चंद्र दिवस तथा/अथवा रात्री में आकाश से लौकिक शक्तियों को प्रतिबिंबित करके पृथ्वी पर पहुँचाता है।

पौधों पर यानि की हमारे फसलों पर उपर्युक्त खगोलीय शक्तियों का प्रभाव सर्वाधिक पड़ता है। उदाहरणस्वरूप शीत ऋतु में रात्री लंबी होने के कारण जिन फसलों में फूल-फल आते हैं उन्हीं फसलों को ग्रीष्म ऋतु में उगाने पर फूल-फल नहीं आते क्योंकि इन पौधों में कुसुमित होने की प्रक्रिया घटित होने के रात्री (अंधकार) का समायान्तरल 12 घंटे से अधिक होना आवश्यक है। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में रात्रि की अवधि 12 घंटे से कम होने के कारण जिन पौधों में कुसुमित होने की प्रक्रिया होती हैं, उन्हीं फसलों को यदि शीत ऋतु में उगाने पर फूल-फल नहीं आते। परंतु कुछ पौधे ऐसे भी होते हैं जिनमें दिवस-रात्रि की अवधि का प्रभाव नहीं पड़ता है, अर्थात् इस प्रकार के फसलों पर ऋतु के अनुसार तापमान से प्रभावित होते हैं। उदाहरणस्वरूप साधारणतः भिंडी की फसल में कम तापमान में कुसुमित होने की प्रक्रिया शुरू नहीं हो पाती जिस कारण इसकी खेती उष्णकटिबंधीय एवं उपोषणकटिबंधीय क्षेत्रों में ही की जा सकती है।

ग्रह-राशि-नक्षत्र के विभिन्न संयोग से उत्पन्न खगोलीय शक्तियों का सीधा प्रभाव पेड़-पौधों यानि की हमारे फसलों पर पड़ता है। अतः तदनुसार फसलों की बुआई, कटाई तथा खड़ी फसल से संबंधित अन्य सभी कार्य करने से समस्याओं में कमी के साथ साथ उत्पादन एवं गुणवत्ता में भी वृद्धि होंने से अधिक लाभ होना स्वाभाविक है।

फल-बीज वर्गीय फसलों की बुआई करने का सर्वोचित समय उन दिनों में होता है जब चंद्र अग्नि तत्व के किसी भी राशि में गोचर कर रहा हो, इसी प्रकार मूल वर्गीय फसलों के लिए भूमि तत्व की राशियाँ, पुश वर्गीय फसलों के लिए वायु तत्व की राशियाँ एवं पर्ण वर्गीय फसलों के लिए जल तत्व की राशियाँ महत्वपूर्ण होती हैं।

चंद्र के कृष्ण पक्ष-शुक्ल पक्ष तथा उत्तरायन-दक्षिणायन का प्रभाव भी पौधों यानि की फसलों से संबंधित कीट-रोगों पर भी दिखाई पड़ता है। पूर्णिमा के समय रस पौधे के पत्तों, फऊओं एवं फलों में केंद्रित रहता है, इस कारण रस चूसक कीटों तथा वायुजीवी फफूंदी एवं बैक्टीरिआ जनित रोगों का प्रादुर्भाव चरम पर रहने की संभावना रहती है, अतः यदि औषधि का छिड़काव पूर्णिमा से पहले चतुर्दशी को प्रातःकाल में सूर्योदय के बाद 9.30 बजे से पहले कर लिया जाए तब इन कीट-रोग कि समस्याओं से फसल का बचाव किया जा सकता है; इसी प्रकार अमावस्या के समय रस का केंद्र जड़ों में होता है, अर्थतः मृदा जनित रोगों का प्रादुर्भाव अधिक होने की संभावना रहती है। इस कारण अमावस्या की पूर्व संध्या को सिंचाई के पानी के साथ औषधि मिट्टी में प्रवाहित करने से फसल का बचाव किया जा सकता है। पूर्णिमा के समय चंद्र का आकर्षण बल सर्वाधिक होने के फलस्वरूप सिंचाई का पानी गहराई तक नहीं जा पाता परंतु अमावस्या के समय यही बल न्यूनतम होने के कारण सिंचाई का पानी अधिक गहराई तक जाता है। अतः कृषक बंधुओं को अमावस्या के आस-पास गहरी परंतु अधिक दिनों के समयान्तराल पर तथा पूर्णिमा के आस-पास हल्की परंतु कम समयान्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। यह प्रक्रिया प्रकृति के नियमानुसार होता है, जिसको भली-भांति समझ कर कृषक बंधु भी अपने फसलों में होने वाले हानि से बचाव कर सकते है।

प्रकृति में **ऋतु-मौसम-जलवायु** की घटना आकस्मिक नहीं होती है बल्कि इसके पीछे खगोलीय पिंडों के विशिष्ट संयोग से उत्पन्न शक्तियों के कारण पृथ्वी के वातावरण में होने वाले बदलाव का परिणाम मात्र है। अतः प्रकृति ने सभी जीवित प्राणियों को

ऋतु-मौसम-जलवायु में होने वाले परिवर्तन का पूर्वानुमान करने की क्षमता प्रदान की हुई है। मनुष्य ने इसके पीछे के विज्ञान को भली-भांति समझा है परंतु समय के साथ 'साइंस' के आवेश में आकर प्रकृति के नियमों के विपरीत व्यवहार के फलस्वरूप यह क्षमता समाज के साधारण व्यक्ति, विशेषकर कृषक बंधुओं में लुप्त होती चली जा रही है।

पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों के व्यवहार का गहन अध्ययन करने से **ऋतु-मौसम-जलवायु** के बारे में पूर्वानुमान को समझने का प्रयास किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप वर्षा ऋतु के आरंभ से पहले ही वृष्टि का परिमाणात्मक अनुमान टिटहरी पक्षी के विभिन्न प्रकार के व्यवहार से उत्पन्न होने वाली विशिष्ट स्थिति से लगाया जा सकता है। कृषक बंधुओं के लिए खरीफ की फसल सबसे महत्वपूर्ण होता है एवं रबी की फसल का प्रदर्शन एवं उत्पादन भी वर्षा ऋतु में हुए वृष्टि की मात्रा से अनुमान लगाया जाता है।

- यदि टिटहरी पक्षी का बड़ा झुंड एक साथ दिखाई पड़े, इसका तात्पर्य है कि वर्षा ऋतु निकट है एवं आद्र जलवायु रहने वाला है; अर्थात कृषक बंधुओं को खेतों में जुताई तुरंत प्रारंभ करना चाहिए।
- यदि टिटहरी पक्षी नदी या तालाब के किनारे ऊँचे स्थान पर अंडे देती है, इसका तात्पर्य है वर्षा ऋतु में अति वृष्टि के कारण बाढ़ आने की प्रबल संभावना है; अर्थात कृषक बंधुओं को निचले खेतों में खरीफ की फसल लेने से बचना चाहिए।
- यदि टिटहरी पक्षी ने पानी के समीप मिट्टी के ऊपर घास पर अंडे दिए हैं, इसका तात्पर्य है वर्षा ऋतु में कम वृष्टि के कारण सूखा पड़ने की प्रबल संभावना है; अर्थात कृषक बंधुओं को नदी या तालाब के समीप निचले खेतों में खरीफ की फसल की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए तथा सूखा सहिष्णु फसलों को प्राथमिकता देनी चाहिए।
- सफेद एवं काले सारस पक्षी अधिक संख्या में एक साथ दिखाई पड़े, इसका तात्पर्य है कि वर्षा ऋतु में औसत या साधारण मात्रा में वृष्टि होने वाली है; अर्थात कृषक बंधु निश्चित होकर सामान्य रूप से खरीफ के फसल की तैयारी में लग जाएं।
- काले-भूरे चींटी भोजन संग्रहीत करते हुए दिखाई पड़ें, इसका तात्पर्य है औसत से अधिक या अति वृष्टि के साथ-साथ वर्षा ऋतु सामान्य से लंबी होने से मिट्टी में पोषक तत्वों के बह जाने से उर्वरा शक्ति में कमी होने की प्रबल संभावना है; अर्थात खरीफ के लिए ऐसे फसलों को प्राथमिकता दें, जिनमें कुछ समय जलमग्न अवस्था में रहने एवं कम उर्वर खेत में सुरक्षित रहते हुए भी सामान्य उत्पादन मिलने की संभावना बनी रहे।
- वर्षा एवं आर्द्र वातावरण के बाद खिले हुए धूप में वाल्मीकि की सफाई करते हुए गीले भोजन को सुखाने एवं मृत चींटियों को बाहर निकालने की प्रक्रिया में कार्मिक चींटियाँ लगी हुई दिखाई पड़े, इसका तात्पर्य है अल्पकालीन शुष्क मौसम के बाद पुनः वर्षा होने की संभावना प्रबल है अर्थात् जल्दबाजी में खेतों की जुताई तथा बीजों की बुआई करना अवश्य ही व्यर्थ परिश्रम एवं व्यय का कारण साबित हो सकता है।
- यदि असंख्य झींगुर किसी खुले क्षेत्र में एकत्रित होकर अपने पंखों से कंपन करते हुए तीव्र ध्वनि उत्पन्न हो रहा हो, इसका तात्पर्य है आद्र मौसम निकट भविष्य में एवं औसत वृष्टि की प्रबल संभावना है अर्थात कृषक बंधुओं को खेतों की जुताई एवं बीजों की बुआई के लिए तैयारी तुरंत प्रारंभ करनी चाहिए।
- पश्चिम दिशा से सर्द वायुप्रवाह होने का तात्पर्य है शुष्क वातावरण का संकेत अर्थात कृषक बंधुओं को खेतों की निराई-गुड़ाई के लिए उचित वातावरण एवं खर-पतवार की सफाई करने पर पुनर्स्थापन की संभावना अति क्षीण है।
- पूर्वोत्तर दिशा से आद्र वायु प्रवाह होने का तात्पर्य है हल्की बौछार पड़ने की संभावना तथा इस कारण कुछ समय तक आर्द्र वातावरण रह सकता है अर्थात् कृषक बंधुओं के लिए खेतों की मिट्टी में हल्की नमी आ जाने के कारण खाद-उर्वरक डालने के लिए उचित समय है।
- दूर कहीं वृष्टि होने की दिशा से कोमल वायु प्रवाह यह इंगित करता है की आगामी 6 से 12 घंटों में आर्द्र वातावरण होने वाला है अर्थात् कृषक बंधुओं को खेतों में सामान्य रूप से कृषि कार्य का संचालन करते रहना चाहिए।
- धूल भरी आंधी या तेज वायु प्रवाह की दिशा से वृष्टि होने की पूरी संभावना होते हुए भी हल्की से मध्यम बौछार पड़ने के पश्चात् शीघ्र ही बादल छँट जाएंगे एवं वातावरण सुहावना हो अर्थात् कृषक बंधुओं को खेतों में सामान्य रूप से कृषि कार्य का संचालन करते रहना चाहिए।
- पहाड़ी इलाकों के जंगलों में आकस्मिक दावानल की स्थिति उत्पन्न होना, समय से पहले वर्षा ऋतु का आगमन एवं लंबे समय तक वृष्टि होने का संकेत है अर्थात् तलहटी में रहने वाले कृषक बंधुओं को खेतों में तद्नुसार खरीफ फसल के लिए तैयारी करनी चाहिए।

- पहाड़ी इलाकों में निचले बादलों का पहाड़ों के ऊपर मंडराना इस बात का संकेत है कि आगामी एक सप्ताह तक मौसम आद्र रहेगा अर्थात कृषक बंधुओं को खेतों में खर-पतवार के सफाई के कार्य को टालना उचित होगा क्योंकि इनके पुनर्स्थापन की संभावना प्रबल रहती है।
- खुला-नीला आकाश परंतु पूर्व दिशा में घने बादलों की उपस्थिति होना संकेत देता है कि आगामी कुछ घंटों के अंदर आंधी तूफान आने की संभावना है अर्थात् कृषक बंधुओं को खेतों में इससे होने वाली कठिनाई से बचने के उपाय एवं संसाधन जुटाने की अग्रिम योजना निर्धारित कर लेनी चाहिए।
- वृष्टि के बाद भी आकाश में निचले बादलों का उपस्थित रहना आर्द्र मौसम की समाप्ति को इंगित करता है अर्थात् कृषक बंधु खेतों में कृषि कार्य पुनः प्रारंभ कर सकते हैं।
- विभिन प्रकार के बादलों का पृथक ऊंचाईयों में उपस्थित रहना अर्थात आगामी मौसम का सटीक पूर्वानुमान कठिन है अतः कृषक बंधुओं को खेतों में उपस्थित वातावरण के अनुसार अपने कृषि कार्य निर्धारित करें।
- नीले आकाश में ऊँचे धवल मेघ शुष्क मौसम का संकेत है अर्थात् कृषक बंधुओं के लिए खेतों में निराई-गुड़ाई एवं खर पतवार की सफाई करने के लिए उचित समय है।
- वर्षा ऋतु के भाद्रपद माह में घने धुंद का बनना इस बात का संकेत देता है की औसत से अधिक वृष्टि होने वाली है अर्थात कृषक बंधुओं को आगामी रबी की फसल के लिए योजना बनाने की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए।
- सूर्यास्त के समय पश्चिमी क्षितिज पर अरुनिम आभा इस बात का संकेत है की आगामी ऋतु में लंबे समय तक शुष्क मौसम रहने की संभावना है अर्थात् कृषक बंधुओं को खेतों में सूखे की स्थिति से निपटने के लिए उपाय एवं तैयारी कर लेना चाहिए।
- जल स्रोत के बारे में प्रकृति में कई प्रकार के संकेत उपलब्ध होते हैं जिनके द्वारा कृषक बंधु खेतों में सिंचाई एवं पेय जल के लिए उचित व्यवस्था कर सकते है।
- जामुन के वृक्ष से पूर्व दिशा में दीमक का वाल्मीकि की उपस्थिति इस बात का संकेत है की वृक्ष से दक्षिण दिशा में मीठे जल का स्रोत उपस्थित है, जिससे वर्ष भर प्रचुर मात्रा जल की आपूर्ति संभव है।
- अर्जुन के वृक्ष से उत्तर दिशा में दीमक का वाल्मीकि की उपस्थिति इस बात का संकेत है की वृक्ष से पश्चिम दिशा में जल का स्रोत उपस्थित है, जिससे सामान्य मात्रा में जल की आर्पूति संभव है।

निष्कर्ष

'साइंस' के द्वारा होने वाले विकास के कारण वैश्विक पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति विश्व युद्धों के समय हुए अन्वेषणों से प्राप्त ज्ञान एवं उपायों से हुआ है, जिसके कारण कृषि की **'पारंपरिक विधि'** में परिवर्तन करके **'उन्नत'** प्रकार का उदाहरण अधिक लाभान्वित पर्याय के रूप में प्रस्तुत किया गया।

कृषि में इस क्षणिक विकास का तुरंत एवं अधिक उत्पादन दर्शाते वैश्विक स्तर पर प्रचार हुआ। विकसित देशों ने इसका पूरा लाभ लेते हुए विकासशील देशों में कृषि को नियंत्रित करना प्रारंभ कर दिया जिससे इन देशों की अर्थव्यवस्था पर भी इन विकसित देशों की पैठ बन गई।

पिछले-दशकों में कृषि परंपरागत की पद्धति अर्थात् प्रकृति के नियमों से इतनी दूर हट गई है कि आज उत्पादन में वृद्धि का एकमात्र पर्याय अधिक मात्रा में कृत्रिक रासायनिक उर्वरक के प्रयोग से ही संभव है, ऐसी झूठी अवधारणा मन में बन गई है। परंतु इससे मिट्टी के अंदर उपस्थित सूक्ष्म एवं गौण जीवाणु तथा जीवों को होने वाले विनाश के कारण उर्वरा शक्ति क्षीण होना तथा बढ़ते हुए कीट-रोग से क्षति का आंकलन किया जाना अति आवश्यक है।

परंतु शनैः शनैः वैश्विक पर्यावरण में हस्तक्षेप का परिणाम विभिन्न प्रकार से हमारे समक्ष आज एक विकराल रूप धारण कर चुका है जिसे हम **''ग्लोबल वार्मिंग''** से जानते है। विगत दो वर्षों में कोविड के कारण हुए वैश्विक स्तर पर हुए संक्षिप्त **'लॉकडाउन'** के कारण हुए पर्यावरण एवं वातावरण में हुए सुधार हम सभी ने अनुभव किया तथा देखा है।

आइये हम सब मिल कर प्रकृति का संरक्षण करते हुए पर्यावरण की रक्षा करने की शपथ लें!!

संपोषित खेतीः प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण संरक्षण की कुंजी

महेन्द्र सिंह भिण्डा, मनोज परिहार, दिनेश चन्द्र जोशी, लक्ष्मी कान्त

भा.कृ.अनु.प.-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)-263601

सारांश

आधुनिक विकास की अंधाधुन्ध गतिविधियों ने प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण दोहन के साथ-साथ पर्यावरण को भी बुरी तरह से प्रभावित किया है जिसके कारण वर्तमान समय में भूमि तथा जल संसाधनों की मात्रा व गुणवत्ता में निरन्तर गिरावट, फसल प्रजातियों का आनुवंशिक ह्रास तथा पर्यावरण प्रदूषण आदि खेती के लिये गंभीर चुनौतियों के रूप में सामने आ रहे हैं। जलवायु परिवर्तन की वजह से उत्पन्न हो रहे जैविक एवं अजैविक तनाव कारकों के कारण भविष्य में फसलों की पैदावार में और अधिक गिरावट होने की संभावना बढ़ती जा रही है। इसके अलावा पारिस्थितिक असंतुलन का खतरा बढ़ने के साथ-साथ मानव स्वास्थ्य पर भी इनके दुष्प्रभाव बढ़ते जा रहे हैं।

वर्तमान कृषि प्रणाली से खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि होने के साथ ही इसका रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों पर अति निर्भरता के कारण मृदा, जल, पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहे हैं। इन सभी चुनौतियों का समाधान कृषि की संपोषित अवधारणा को अपनाकर किया जा सकता है। आधुनिक कृषि प्रणाली की तुलना में, संपोषित खेती में प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया जाता है। संपोषित खेती में संसाधनों का उपयोग के साथ वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ भावी पीढ़ी की जरूरतों का भी ध्यान रखा जाता है। इसलिए इसे सतत कृषि, निर्वहनीय कृषि, समगतिशील कृषि तथा टिकाऊ कृषि आदि अन्य नामों से भी जाना जाता है।

संपोषित खेती एवं आधुनिक खेती की तुलना

संपोषित खेती में फसल प्रबन्धन एवं फसल सुरक्षा के लिए अपनाई जाने वाली क्रियाएँ आधुनिक खेती की तुलना में अलग होती हैं। संपोषित खेती में आनुवंशिक संसाधनों की निरंतरता तथा जल संसाधनों के रख-रखाव के साथ ही मृदा संरक्षण पर भी विशेष जोर दिया जाता हैं। संपोषित खेती में मिट्टी की उपजाऊ क्षमता को बनायें रखनें एवं बढ़ानें के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन को काम में लाया जाता है। फसल सुरक्षा हेतु कीट तथा रोगों से बचाव एवं नियंत्रण के लिए समन्वित पीड़क एवं रोग प्रबन्धन को अपनाया जाता हैं तथा इसी तरह से खरपतवार नियंत्रण के लिए समन्वित खरपतवार प्रबन्धन को व्यवहार में लाया जाता है। जबकि इसके विपरीत आधुनिक खेती में मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों तथा कीट, रोग एवं खरपतवार से बचाव के लिए रसायनों का प्रयोग होता हैं, जो प्राकृतिक संसाधनों, पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

संपोषित खेती के मुख्य घटक

परम्परागत फसल प्रजातियों एवं पौध किस्मों का संरक्षण

हरित क्राँति के फलस्वरूप देश में खाद्यान्न उत्पाद में वृद्धि के लिए कुछ ही फसलों जैसे की गेहूँ, धान तथा मक्का आदि में अधिक उपज देने वाली तथा संकर किस्मों के व्यापक उपयोग के कारण अन्य विभिन्न फसलों की पारम्परिक देशी किस्में तथा फसल प्रजातियों या तो विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं। उच्च उपजशील या संकर किस्मों की तुलना में देशी किस्में अधिक पौष्टिक होती है। इसके अतिरिक्त इनमें बहुत से जैविक तथा अजैविक तनाव कारकों के विरुद्ध अवरोधी गुण (जैसे की रोग प्रतिरोधकता, कीट प्रतिरोधकता, सूखा एवं लवण सहनशीलता आदि) पाये जाते हैं। यें गुण भविष्य में फसल किस्म सुधार में कारगर साबित हो सकते हैं। चूंकि संपोषित खेती में जैव-विविधता के संरक्षण पर विशेष बल दिया जाता है इसलिए इस प्रकार की खेती में आधुनिक उच्च उपज देने वाली किस्मों तथा संकर प्रजातियों के साथ-साथ देसी किस्मों की खेती का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार संपोषित खेती में विभिन्न फसलों की देसी प्रजातियों एवं किस्मों को संरक्षित किया जाता हैं, जिससे की भावी पीढ़ियाँ इनसे लाभान्वित हो सके।

जल संसाधनों का संरक्षण

पारम्परिक कृषि कार्यों हेतु जल के अंधाधुंध दोहन के फलस्वरूप भूमिगत जल स्तर में तेजी से गिरावट आ रही है। संपोषित खेती में जल संसाधनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया जाता है। इस हेतु वर्षा जल के संचय, जल विभाजक प्रबन्धन पर विशेष ध्यान दिया जाता हैं ताकि वर्षा जल का अधिक से अधिक उपयोग कृषि एवं अन्य कार्यों में किया जा सके। इसके अतिरिक्त जल बचाव के लिए बूँद-बूँद सिंचाई (ड्रिप) विधियों के प्रयोग पर भी जोर दिया जाता है, जिसमें सिंचाई कार्यों हेतु जल का न्यूनतम इस्तेमाल होता है। इस प्रकार इन उपायों को अपनाने से जल संरक्षण को बढ़ावा मिलता है।

मृदा संरक्षण

खेती के लिए भूमि एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण व सीमित प्राकृतिक संसाधन है। अतः संपोषित खेती में मृदा संरक्षण का भी विशेष ध्यान रखा जाता है, क्योंकि पारम्परिक कृषि पद्धतियों का सर्वाधिक हानिकारक प्रभाव भूमि पर पड़ा हैं। आज भारत के कुल क्षेत्रफल 329 मिलियन हेक्टयर का लगभग 178 मिलियन हेक्टेयर भूमि बंजर या बेकार भूमि में तब्दील हो चुकी हैं। इसमें लगभग 7 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता तथा लगभग 6 मिलियन हेक्टेयर भूमि जल-जमाव से प्रभावित है। रासायनिक खादों के अंधाधुन्ध प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में विकार उत्पन्न हो रहे हैं।

पारम्परिक कृषि जुताई प्रक्रियाओं से मृदा अपरदन को बढ़ावा मिलता है। अतः संपोषित कृषि में जुताई प्रक्रिया को इस प्रकार व्यवहार में लाया जाता हैं, जिससे की मृदा संरक्षण को बढ़ावा मिल सकें। इसलिए पारम्परिक जुताई के स्थान पर संरक्षित जुताई विधियों को काम में लिया जाता हैं। संरक्षित जुताई में कृषि भूमि को न्यूनतम अव्यवस्थित किया जाता है, जिससे फसलों के अवशेष मृदा सतह पर बनें रहें। यें फसल अवशेष मृदा को जल तथा वायु क्षरण से सुरक्षा प्रदान करते हैं और बाद में विघटित होकर मिट्टी के उपजाऊपन को भी बढ़ातें हैं।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

आधुनिक खेती में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा क्षरण को बढ़ावा मिलने के साथ-साथ सतही तथा भूमिगत जल भी दूषित हो जाता हैं। इसलिए संपोषित कृषि में मृदा की उपजाऊ क्षमता को बढ़ानें एवं बनायें रखनें के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन को काम में लिया जाता है। समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन में गोबर खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, जैविक खाद तथा खली आदि का इस्तेमाल होता हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर सीमित मात्रा में रासायनिक खादों का भी प्रयोग किया जाता हैं।

जैविक खाद के रूप में दलहनी फसलों हेतु *एजोराइजोबियम, ब्रैडीराजोबियम, मिसोराइजोबियम, राइजोबियम*तथा *साइनोराइजोबियम* आदि जीवाणुओं का उपयोग किया जाता हैं। गैर-दलहनी फसलों जैसें- धान, गेहूँ, जौ, ज्वार, मक्का, गन्ना आदि के लिए *एजोटोबेक्टर, बेजरिंकिया, क्लास्टिरिडियम, रोडोस्पारिलम* तथा *एजोस्पाइरिलम* जैसे नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं का प्रयोग किया जाता हैं। इन जीवाणुओं की प्रजातियों की नत्रजन स्थिरीकरण क्षमता 20 से 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक पाई जाती हैं।

एस्परजिलस, पेनिसिलियम, फ्यूजेरियम तथा *ट्राइकोडरमा* जैसे कवकों का प्रयोग सेल्युलोटिक जैविक खाद के रूप में करने से कार्बनिक पदार्थों के विघटन की दर बढ़ जाती है, जिससे प्रमुख पोषक तत्व कार्बनिक पदार्थों से मुक्त होकर फसली पौधों को आसानी से उपलब्ध हो पाते हैं।

सामान्यतः फॉस्फोरस पोषक तत्व मृदा में अघुलनशील अवस्था में पाये जाने के कारण पौधें काम में नहीं ले पाते हैं। फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने के लिए जैविक खाद के रूप में *स्यूडोमोनास प्यूटिडा* एवं *बैसीलस सबटिलिस* जैसें जीवाणुओं का उपयोग होता हैं। जिसके कारण मृदा में फॉस्फोरस की उपलब्धता कई गुना बढ़ जाती हैं। जीवाणुओं के अलावा कवक मूल कवकों जैसें की *ग्लोमस, इण्डोगोन, स्केलोरोसिस्टिस, अकोलोस्पोरा* तथा *गाइगास्पोराको* आदि भी फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने के लिए जैविक खाद के रुप में प्रयोग किये जा सकते हैं। यह कवकमूल कवक, फसलों के साथ सहसम्बन्ध बनाकर उन्हें फॉस्फोरस की आपूर्ति करते हैं।

संपोषित खेती में मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए हरी खाद जैसें की ढ़ैचा, बरसीम, सनई, मसूर आदि का उपयोग किया जाता हैं। इन हरी खाद वाली फसलों को खेत में उगाकर उनकी पुष्पावस्था से पूर्व जुताई कर दी जाती हैं। हरी खाद से मृदा में नत्रजन तत्व में वृद्धि होने के साथ ही कार्बनिक पदार्थों की भी वृद्धि होती हैं, जिससे मृदा की संरचना में सुधार होता हैं। परिणामस्वरूप मृदा संरक्षण को बढ़ावा मिलता है और साथ ही मृदा की जलधारण क्षमता में भी वृद्धि होती हैं।

समन्वित पीड़क प्रबन्धन

आधुनिक खेती में पीड़कों के नियंत्रण हेतु पीड़कनाशियों के अंधाधुन्ध प्रयोग से पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा हैं। कीटनाशक खाद्य श्रृंखला द्वारा मानव शरीर में पहुँचकर स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में डी.डी.टी. नामक कीटनाशी की सर्वाधिक मात्रा (13.30 पीपीएम) भारतीयों के शरीर में पायी जाती है। समन्वित कीट प्रबन्धन में यांत्रिक, कर्षण तथा जैविक गतिविधियों का उपयोग कीटों के नियंत्रण में होता हैं। केवल जरुरत पड़ने पर रासायनिक विधि का सीमित उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त रोग-रोधी एवं कीट-रोधी फसलों के इस्तेमाल से रोगाणुओं तथा कीटों पर नियंत्रण पाया जाता हैं। जैविक नियंत्रण में सूक्ष्मजीवों जैसें की *बैसिलस थुरेनजियेन्सिस, ट्राइकोर्डमा विरिडी* आदि का उपयोग होता हैं।

संपोषित कृषि में पादप रोगों के नियंत्रण के लिए फसल चक्र पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिसके अन्तर्गत एक ही प्रकार की फसल को बार-बार एक ही खेत में उगाने से बचा जाता है। इस प्रकार फसलों के हेर फेर से रोगाणुओं की संख्या नियंत्रित रहती है, परिणामस्वरूप रोग लगने की संभावना कम हो जाती है।

समन्वित खरपतवार प्रबन्धन

संपोषित खेती में खरपतवारों के नियंत्रण हेतु समन्वित खरपतवार प्रबन्धन का उपयोग होता हैं। जिसमें यांत्रिक, कर्षण एवं जैविक तरीकों से खरपतवारों पर नियंत्रण किया जाता हैं। अतिआवश्यकता होने पर शाकनाशियों का सीमित उपयोग भी खरपतवार नियंत्रण हेतु किया जाता हैं। यांत्रिक विधि में खरपतवारों को हाथ से अथवा कृषि औजारों के इस्तेमाल से समूल नष्ट कर दिया जाता हैं। कर्षण विधि में खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के लिए खरपतवार रहित बीजों को काम में लेते हैं। इसके अतिरिक्त इस विधि में खरपतवारों का नियंत्रण उचित फसल चक्र गतिविधियों को अपनाकर भी किया जाता है। जैविक विधि में खरपतवारों का नियंत्रण उनके प्राकृतिक शत्रुओं जैसें की कीटों एवं रोगाणुओं के इस्तेमाल से किया जाता हैं।

निष्कर्ष

रासायनिक उर्वरकों एवं पीड़कनाशियों पर आधारित आधुनिक खेती की तुलना में संपोषित खेती के अनेक लाभ हैं। संपोषित खेती से मिट्टी, पानी, जैव-विविधता तथा पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता हैं। इस प्रकार संपोषित खेती पारिस्थितिक संतुलन को बनाये रखने में मद्दगार होती है। खाद्य पदार्थ, पीड़कनाशियों के अवशेषों से रहित होने से उनकी उच्च पोषण गुणवत्ता भी बनी रहती है। संपोषित खेती में रासायनिक खादों एवं कीटनाशियों का प्रयोग नगण्य मात्रा में होने की वजह से खेती में लागत को कम करने में मदद मिलती है। इस प्रकार संपोषित खेती भारत जैसे-विकासशील देश के लिए लाभकारी है, क्योंकि देश के ज्यादातर किसान छोटी पूँजी वाले एवं गरीब हैं, जिनके लिए कृषि की वर्तमान प्रणाली को वहन करना अब महंगा सौदा साबित हो रहा है तथा यह उनके आर्थिक पिछड़ेपन की एक प्रमुख वजह भी बनता जा रहा है।

जैविक खेती के लिए जैव खादों का वैज्ञानिक उत्पादन एंव प्रबन्धन

नवनीत पारीक

प्राध्यापक, मृदा विज्ञान विभाग, गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

सारांश

जैविक खेती की पद्यति में मृदा को एक जीवित-सजीव माध्यम माना गया है। मृदा में असंख्य जीव रहते हैं जो एक दूसरे के पूरक होने के साथ साथ पौधों की वृद्धि हेतु पोषक तत्वों को भी उपलब्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जैविक खेती में रसायनों का कम से कम या ना के बराबर प्रयोग कर स्थानीय वातावरण/पर्यावरण के प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखते हुए नैसर्गिक संसाधनों को प्रदूषित किये बिना टिकाऊ उत्पादन किये जाने वाली विधियों पर ध्यान दिया जाता है। जैविक खेती में विभिन्न घटकों के लघु उपयोग के बीच समन्वय स्थापना कर जैविक खेती से लक्ष्य उत्पादन किया जा सकता है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में गुणकारी स्वास्थ्य और जीवित मृदा का मुख्य स्थान है। साधारणतः एक ग्राम अच्छी मृदा में चार खरब जीवाणु व अन्य जीव होते हैं। गोबर खाद को मृदा में मिलाने पर मृदा की गुणवत्ता बहुत बढ़ जाती है। गोबर खाद का वैज्ञानिक तरीके से उपयोग कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

जैविक खेती क्यों?

हमारे देश की लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्नों की माँग की आपूर्ति करने हेतु रसायनिक उर्वरक, विषैले उर्वरक, विषैले कीटनाशकों का अंधा धुंध प्रयोग करके खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाया गया जिससे **हरित क्रांति** का जन्म हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं की रसायनों एवं ऊर्जा का प्रयोग करके हमने कृषि उत्पादों की उत्पादकता क्षमता बढ़ाने में कामयाबी हासिल की, लेकिन इसके साथ ही इन रसायनों का दुष्प्रभाव भी भूमि के स्वास्थ्य एवं गुणवत्ता तथा पौधें एवं प्राणियों के स्वास्थ्य पर भी दिखई देने लगा। वैज्ञानिकों द्वारा किये गये सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि वर्तमान में व्यवसायी सब्जी उत्पादन हेतु संकर प्रजातियों का ज्यादातर प्रयोग किया जा रहा है। खाद्य उत्पादन क्षेत्र में इन्ही व्यवसायी सब्जी एवं फल उत्पादन में सबसे ज्यादा विषैले कीटनाशकों/फफूँदीनाशकों का प्रयोग किया जा रहा है इन रसायनिक कीटनाशकों/फफूँदीनाशकों के निरंतर प्रयोग से प्रतिवर्ष कीटों रोगों की विविधता व उनकी संख्या में वृद्वि के संकेत मिल रहे हैं एवं इनमें प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो चुकी है। इनके नियंत्रण के लिए दिन-प्रतिदिन कीटनाशकों की मात्रा व छिडकाव की मात्रा में भी भारी वृद्वि हो रही है। इसके साथ ही संकर प्रजातियों की उत्पादन क्षमता ज्यादा होने के कारण अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है जिनकी आपूर्ति हेतु मुख्यतः रसायनिक उर्वरकों का अधिक प्रयोग किाया जाता है। भूतकाल मे निरंतर अधिक मात्रा में रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरकता, स्वास्थ्य, गुणवत्ता तथा आस-पास के वातावरण पर भी दुष्प्रभाव देखे गये हैं। मृदा एवं कृषि उत्पादों में प्रदूषणों का स्तर कम करने तथा नियंत्रण में रखने एवं पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए उन्नत एवं प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

रसायन एवं ऊर्जा पर निर्भर आधुनिक खेती का विकल्प **"जैविक खेती"** में देखा जा रहा है। मूलतः जैविक खेती एक पारम्परिक भारतीय कृषि पद्धति है। जैविक खेती विश्व के उन्नत राष्ट्रों में पहले से ही प्रसिद्ध है व विकासशील राष्ट्रों में भी इसके प्रति रूझान देखा जा रहा है। वर्तमान में विश्व बाजार मे जैविक उत्पादों का व्यापार 21 खरब डालर से अधिक का हो रहा है। भारतवर्ष में काफी हद तक जैविक खेती की शुरूआत हुई है परन्तु इसको और बढ़ाने तथा गति देने हेतु कृषकों को प्राकृतिक संसाधनों के वैज्ञानिक तरीके से उपयोग करने के लिए उन्नत तकनीकियों के बारे में प्रशिक्षित करना जरूरी है। इसके अलावा आम लोगों में जैविक उत्पादों के लाभों के बारे में जागरूकता लाना भी जरूरी है। वर्तमान परिस्थितयों, प्राकृतिक कारणों एंव बाजार की मांग को ध्यान मे रखते हुए एवं जैविक खेती के सपने को साकार करने के लिए जैविक सब्जी उत्पादन/फल उत्पादन पर घ्यान केन्द्रित करना ही आज की जरूरत है।

जैविक खेती क्या है?

जैविक खेती की पद्धति में मृदा को एक जीवित-सजीव (Living) माध्यम माना गया है। मृदा में असंख्य जीव रहते है जो एक दूसरे के पूरक होने के साथ-साथ पौधों की वृद्धि हेतु पोषक तत्वों को भी उपलब्ध कराने में अहम भूमिका निभाते हैं। जैविक खेती में रसायनों का कम से कम या ना के बराबर प्रयोग कर स्थनीय वातावरण/पर्यावरण के प्राकृतिक संतुलन को कायम रखते हुए नैसर्गिक संसाधनों (मिट्टी, जल, वायु आदि) को प्रदूषित किये बिना टिकाऊ उत्पादन लिए जाने की विधियों पर ध्यान दिया जाता है।

जैविक खेती के प्रमुख घटक

जैविक खेती के विभिन्न घटकों के लघु उपयोग के बीच समन्वय स्थापित कर जैविक खेती से लक्ष्य उत्पादन किया जा सकता है। ज्यादातर जैविक खेती फसल चक्र, फसल के बाद फसल अवशेष, गोबर, दलहनी फसलें, अन्य जैविक कचरा, हरित खादें (green manures) एवं जैविक कीट एवं रोग नियंत्रण आदि पर निर्भर होती हैं। जैविक खेती के प्रमुख घटक निम्न प्रकार हैं-

- एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
- एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन
- एकीकृत मृदा एवं जल प्रबंधन
- एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में गुणकारी स्वस्थ एवं जीवित मृदा का प्रमुख स्थान है साधारणतय 1 ग्राम अच्छी मृदा में चार खरब जीवाणु व अन्य जीव होते हैं। यह जीवाणु एवं अन्य जीव भूमि में पाये जाने वाले फसल अवशेषों एवं अन्य जैविक अवशेषों को सड़ा-गलाकर जीवांश में परिवर्तित करते हैं व मृदा को सजीव रखते हैं। यह जीवाणु ह्यूमस में पाये जाने वाले ह्यूमिक अम्ल द्वारा मृदा में उपलब्ध खनिजों के घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के अंतर्गत मुख्यतः जैविक खादें (Biofertilizers), हरित खादें, फसल चक्र (crop rotation) एवं वनस्पति अवशेषों को कम्पोस्ट में परिवर्तित कर पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सकती है रासायनिक उर्वरकों का कम से कम प्रयोग किया जाता है।

मृदा में उपलब्ध जैविक पदार्थों से निरंतर पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिएः-

- मिट्टी में नियमित रूप से जीवांशों (organic matter) को डालने से संतुलित पौध पोषण में सहायता मिलती है।
- फसल चक्र का चुनाव ऐसा हो जिससे पोषक तत्वों की पूर्ति संतुलित रूप से हो सके जैसे (नत्रजन की पूर्ति दलहनी फसलों द्वारा/हरित खाद फसलों से पोषक तत्व आदि)।
- भूमि को हवादार रखने से जीवाणुओं की क्रियाओं को गति मिलती है, जिससे विभिन्न पोषक तत्वों के चक्र गतिशील होकर पौधों को उपलब्ध होते हैं।

(क) गोबर खाद (एफ. वाय. एम.)

पशुओं का गोबर एवं गोशाला में बिछाने के लिए प्रयोग मे लिए गये फसल अवशेषों को सड़ा-गलाकर बनाये गये खाद को गोबर खाद या फर्म यार्ड मैन्युअर (एफ. वाय. एम.) कहते हैं। गोबर खाद का वैज्ञानिक तरीके से ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

गोबर की खाद का वैज्ञानिक प्रबंध

गोबर की खाद दूध के लिए पाले जाने वाले एवं घरेलू जानवरों के द्वारा त्यागे गये मल-मूत्र तथा जानवरों को खिलाए जाने वाले चारे एवं उनके नीचे बिछाये गये बिछावन का वह भाग है जो बेकार हो जाता है से तैयार की जाती है। गोबर की खाद बहुत ही आसानी से किसानों के घरों में उपलब्ध हो जाती है। यह खाद मृदा में मिलाने पर मृदा की गुणवत्ता में सुधार लाती है।

गोबर की खाद के महत्व -

गोबर खाद के प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है।

1. भौतिक गुण जैसे-
   - मृदा में नमी की मात्रा बनाये रखती है।
   - मृदा को कणाकार बनाती है।
   - मृदा को भूरभूरा बनाती है।
   - मृदा के तापमान में वृद्धि करती है।
   - मृदा अपरदन को रोकती है।
2. रासायनिक गुण -
   - मृदा में पोषक तत्वों की पूर्ति करती है।
   - नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर इत्यादि की आवश्यकता की पूर्ति करता है।
   - मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों को उपलब्ध कराती है। जैसे- Cu, Fe, Mn
3. जैविक गुण -
   - गोबर की खाद सूक्ष्म जीवों के भोजन का काम करती है।
   - गोबर की खाद के उपयोग से सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता एवं संख्या में वृद्धि होती है।
   - सूक्ष्म जीवों की क्रिया बढ़ने से गोबर की खाद का अपघटन तेज होता है।
   - जिसके कारण पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है।
   - इसके प्रयोग से जीवांश की मात्रा में वृद्धि होती है। जिससे उर्वरता में वृद्धि होती है।
   - फसलोत्पादन में वृद्धि होती है तथा अधिक लाभ लिया जा सकता है।

गोबर की खाद का वैज्ञानिक प्रबंध

इसके वैज्ञानिक प्रबंध में जो ध्यान देने वाली महत्वपूर्ण बात है वह कि गोबर की खाद के पोषक तत्वों को बनाए रखना।

गोबर खाद का वैज्ञानिक प्रबंधन में ध्यान देने योग्य बातेंः

- गोबर की खाद से पोषक तत्वों की कम से कम क्षति सुनिश्चित करने के लिए इसमें पर्याप्त नमी बनाये रखें (ना ज्यादा गीला एवं न ज्यादा सूखा हो) गोबर खाद का गड्ढा भरने के उपरान्त इसमें पर्याप्त नमी बनाकर इसको बारीक कंकड़-पत्थर रहित मिट्टी एवं गोबर के मिश्रण से लीप दें।
- यदि इसमें सफेद फफूंद के धागे/धब्बे दिखाई दे तो यह नमी के कमी को दर्शाते हैं। एसी अवस्था में तुरंत पानी या गो-मूत्र छिड़ककर नमी को बनाये।
- यदि गोबर खाद के गड्ढे से बदबू आये या पीले हरे कलर के धब्बे या फफूंद दिखाई दे तो यह ज्यादा नमी या कम हवा को दर्शाते हैं। ऐसी दशा में तुरंत पानी की निकासी सुनिश्चित करें या गोबर के खाद को निकालकर दूसरे गड्ढे में भरें।
- अच्छी गोबर खाद बनाने के लिए गोबर का रंग पूर्ण सड़न-गलन विधि के बाद भूरे से काला होना चाहिए। इस प्रकार बनी खाद से बदबू नहीं आती है।

गड्ढा विधि

जानवरों से प्राप्त ताजे गोबर का विसर्जन हम एक 1-2 फीट गहरे 2-4 फीट लम्बे एवं चौड़े गड्ढे में करना चाहिए। इसके लिए खेत के किनारे अथवा घर के पीछे हमे इस प्रकार का गड्ढा खोद लेना चाहिए और इसी में ताजे गोबर को डालना चाहिए। यह गड्ढा हमें ऐसी जगह बनाना चाहिए जहाँ हम इसमें रखे गये गोबर को सीधी सूर्य की किरणों से तथा बरसात के पानी से बचा सके। इसके लिए हम जहाँ यह गड्ढा खोदें उसके ऊपर प्लास्टिक की चादर चार बाँस के द्वारा या एक छप्पर लगा सकते हैं या हम इस पर काली प्लास्टिक की चद्दर भी डाल सकते हैं। इस गड्ढे में गोबर का ढेर हम 1 मीटर ऊँचा लगा सकते हैं। इस ढेर के अन्दर भूसा, मूत्र, इत्यादि भी डाल सकते हैं। इस खाद की पोषक तत्व क्षमता बढ़ाने के लिए हम इसमें एक से दो मुट्ठी यूरिया या डी. ए. पी. भी डाल सकते हैं। इस ढेर को हर एक महीने बाद थोड़ा दबा देना चाहिए। जिससे इसमें और ताजा गोबर आ जाये। जब इस ढेर की ऊँचाई 1 मीटर हो जाये इसके पश्चात् इसको कुछ ताजा गोबर मिट्टी के साथ मिलाकर इस पर लेप लगा देना चाहिए और तीन-चार महीने के बाद खाद में बदलकर खेत में डालने के लिए तैयार हो जायेगा। लेप लगाने से पहले अगर आप को यह लगे कि इसमें नमी की कमी है तो थोड़ा पानी का छिड़काव भी कर सकते हैं। इस ढेर के चारों तरफ एक 4-6 इंच ऊँची मिट्टी की मेडे बना लेनी चाहिए जिससे की पोषक तत्वों का नुकसान न हो।

ध्यान देने योग्य बातें।

1. गड्ढे का धरातल सख्त अथवा पक्का हो।
2. ढेर में पर्याप्त नमी हो।
3. सूर्य की किरणों से बचाव हो।
4. बरसात के पानी से बचाव हो।
5. तेज हवा से भी बचाव हो।
6. ढेर के अस-पास पानी इक्ट्ठा न हो।
7. ढेर में न ज्यादा नमी हो न ज्यादा सूखा हो।
8. अगर ढेर के अन्दर सफेद रंग की फफूँद दिखाई दे इसका मतलब है कि ढेर सूखा है इसमें नमी की कमी है तो हम इसमें या तो जल या गौमूत्र मिला सकते हैं।
9. पीले हरे रंग या गंदी बदबू आ रही है तो इसका मतलब है कि ढेर में नमी ज्यादा है और प्रर्याप्त वायु की उपलब्धता नही है।
10. अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद काले एवं भूरे रंग की होती है तथा इसमें से सड़ने की बदबू नहीं आती है।
11. अच्छी प्रकार से सड़ी हुई खाद भुरीभुरी होती है और हाथों पर नहीं चिपकती है।

(ख) कम्पोस्ट खाद (उदाहरणः केंचुआ खाद)

इसके अलावा फसलों एवं अन्य वनस्पतिक अवशेषों को सड़ा-गलाकर, इनको कम्पोस्ट में परिवर्तित कर इनमें उपलब्ध पोषक तत्वों को पुनः चक्रित करके पौधों को उपलब्ध कराये जा सकते हैं। कम्पोस्ट खाद बनाने की कई नयी विधियां हैं जिससे प्राप्त कम्पोस्ट में पोषक तत्वों के अलावा लाभदायक जीवाणु, फंजाई, एक्टिनोमाइसिटीज, विटामिन्स, एन्जाइम्स आदि पर्याप्त मात्रा में होते हैं जो मिट्टी की उर्वरक शक्ति को बरकरार रखने में एवं पौधों के वृद्धि में मद्द करते हैं।

केचुओं को कृषकों तथा बगवानों का मित्र कहा जाता है। यह जीव छोटे होने के बवजूद भी साधारणतः 4-5 वर्ष जीते हुए किसानों की सेवा करते हैं। गोबर एवं सड़े-गले कार्बनिक अवशिष्टों को केचुओं की मदद से पचाया जाता है जिससे जैविक खाद एवं केंचुओं का उत्पादन साथ-साथ होता है। इस विधि से खाद बनाने को वर्मी कम्पोस्टिंग तथा केंचुओं के मल को 'केंचुआ खाद' या 'वर्मी कम्पोस्ट' कहते हैं।

I. केंचुआ खाद के लिए केंचुओं का चुनाव

केंचुआ जैविक पदार्थ या जैविक कचरा (घरेलू, शहरी, कृषि अवशेष, खरपतवार, गोबर आदि) एवं मिट्टी खाने वाले जीव हैं जो सेप्रोफेगस वर्ग में आते हैं। केंचुए मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

(1) डेट्रीटोव्होरस (2) जीओफेगस

डेट्रीटोव्होरस केंचुए जमीन के उपरी सतह पर पाये जाते हैं जिन्हें सतही केंचुए भी कहा जाता है। वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिए सतही केंचुओं का प्रयोग किया जाता है। यह मिट्टी कम तथा जैविक (कार्बनिक) पदार्थ अधिक एवं तेजी खाते हैं। सतही केंचुएं (आइसिनिया/यूड्रीलस) स्थानीय बाजारों, संबंधित सरकारी/गैरसरकारी संस्थाओं में उपलब्ध होते हैं। ये लाल/चमकीले रंग चपटी पूंछ के होते हैं। केंचुआ खाद बनाने के लिए कृषि अवशिष्ट जैसे ज्वार, गेहूँ, मक्का का भूसा फल-फूल तथा वानिकी पौधों के सूखे पत्ते, सब्जियों से निकला कचरा, खरपतवार आदि, गाय-भैंस, बकरी का गोबर, गौशाला का कचरा, बायो गैस की स्लरी आदि को प्रयोग मे ला सकते हैं।

II. केंचुआ खाद तैयार करने की विधियां

1. जमीन के ऊपर कार्बनिक कचरा तथा गोबर का ढेर बनाकर
2. जमीन के ऊपर मिट्टी तथा पत्थर एवं ईंटों से बनी दीवारों के अन्दर
3. गड्ढा विधि
4. चक्रीय विधि
5. वृक्ष थाला विधि

उपरोक्त विधियों में केंचुआ खाद बनाने का तरीका तकरीबन एक जैसा ही है। केंचुआ खाद बनाने के लिए जैविक/कार्बनिक अवशिष्टों को कैसे भरा जाता है इसका विवरण निम्नानुसार है-

- कार्बनिक जैविक अवशिष्टों की तह लगाने से पूर्व जमीन को अच्छी तरह से लकड़ी से पीटकर पक्का बना ले अथवा पालीथीन शीट बिछाऐं ताकि केंचुएं जमीन के अन्दर न जा सके।
- इसके ऊपर 15-20 से.मी. मोटी कार्बनिक/जैविक अवशिष्टों कचरे की तरह बनाऐं।
- एक बाल्टी/तसले में गोबर की स्लरी बनाकर समान रूप से तह पर डाल दें अथवा गोबर प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने की स्थिति में 1-2 इंच गोबर की तह बनाऐं।
- इस तरह की तह जमीन/गड्ढ़ों के 0.5-1 फिट ऊपर तक बनाते हुए भर दें।
- ऊपर से मिट्टी लिपाई कर गड्ढे को बन्द कर दें।
- जैविक अवशिष्टों को 20-25 दिनों तक सड़ने-गलनें दें।
- 20-25 दिनों के बाद ऊपरी सतह पर दरारें बन जायेंगी। इन बनी दरारों द्वारा केंचुआ गड्ढे के अन्दर छोड़ दें।
- गड्ढों को ऊपर से खरपतवार/मोटी टाट-पट्टी/काली पॉलीथीन से ढ़क दें।
- गड्ढे में प्रर्याप्त नमी बनाये रखने हेतु हर तीसरे दिन पानी छिड़कें।
- इस तरह केंचुआ खाद 2.5 से 3 महीने में तैयार हो जाती है।

III. केंचुआ खाद के लिए गड्ढे का आकार

सामान्य गड्ढे की चौड़ाई 2.5 से 3.5 फिट, ऊँचाई 1 से 2.5 फिट व लम्बाई 1 मीटर तथा अधिक रखी जाती है। गड्ढे की लम्बाई कार्बनिक/जैविक अवशिष्टों की मात्रा एवं केंचुओं की उपलब्धता पर निर्भर करेगी। 2.5 फिट लम्बाई के गड्ढे में केंचुओं की 1 कि.ग्रा. मात्रा प्रर्याप्त होती है।

IV. तैयार खाद को निकालना तथा केंचुओं को अलग करना

केंचुआ खाद 2.5 से 3 माह में तैयार हो जाती है। यह खाद चाय के पाउडर जैसी हल्की काली दिखती है तथा इसमें मिट्टी के समान सोंधी गंध होती है। जब खाद बन जाये तो इसको गड्ढे पिट से निकालकर छोटे-छोटे ढेर बना लें। इससे केंचुएं सूर्य की रोशनी, तापमान के कारण दूर जाकर खाद की निचली सतह पर एकत्र हो जाते हैं एवं इस अवस्था में इन्हें खाद से अलग किया जा सकता है।

गुणवत्ता में वृद्धि हेतु

कम्पोस्ट की गुणवत्ता में वृद्धि करने हेतु उपरोक्त 1-4 की कम्पोस्ट विधियों में गड्ढा-टांका भरते समय 30-40 कि.ग्रा. रॉक फॉस्फेट मिलाया जाता है। तीन माह के बाद टंके में जगह-जगह सब्बल से छेद करके इसमें 2 कि.ग्रा. एजोटोबेक्टर व 1 कि.ग्रा. स्फूर घोलक जीवाणु (पी एस बी) कर 150-200 लीटर पानी में घोल बनाकर डाला जाता है। जिससे इस प्रकार की कम्पोस्ट की गुणवत्ता में भारी वृद्धि हो जाती है।

निष्कर्ष

अंत में यही कहना है कि यदि ताजे गोबर एवं सड़े-गले कार्बनिक अवशिष्टों का कथानुसार प्रबंध करेगे तो अधिक से अधिक लाभ प्राप्त होगा और मृदा का सुधार एवं स्वास्थ भी अच्छा रहेगा।

नैसर्गिक संपदा मृदा का संतुलित एवं टिकाऊ तरीके से प्रयोग करके मृदा को भविष्य की धरोहर के रूप में सवंर्धित रखना हर एक मनुष्य प्राणी का परम धर्म है। इसकी रक्षा करना एवं इसको आने वाली पीढ़ी को यथार्थ रूप या उससे अच्छी स्थिति में सुपुर्द करना ही हमारा कर्त्तव्य है। जैविक विधाओं/खादों का ज्यादा से ज्यादा औद्यानिकी में प्रयोग कर नैसर्गिक/प्राकृतिक संपदाओं तथा संसाधनों को टिकाऊ रखा जा सकता है।

ग्लोमालिनः जैविक खेती में महत्वपूर्ण एक बहु उपयोगी जैव उत्पाद

दीपक मौर्य[1], एस के रेज़ा[1], एस बंधोपाध्याय[1] एवं गरिमा गुप्ता[2]

[1]राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, क्षेत्रीय कार्यालय-कोलकाता

[2]कृषि-वानिकी विभाग, रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

कृषि में रसायन का कम उपयोग,
स्वस्थ समुदाय, पारिस्थितिकी निरोग।।

सारांशः

बढ़ती जनसंख्या का पेट भरना और उसे पोषण युक्त भोजन उपलब्ध कराना इस समय की एक बड़ी चुनौती है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ कृषि उत्पादन का बढ़ाया जाना आवश्यक है और ऐसे में कृत्रिम उर्वरकों का प्रयोग अपरिहार्य है किंतु इन उर्वरकों के अनियंत्रित उपयोग का विपरीत प्रभाव पिछले कुछ वर्षों में मनुष्य स्वास्थ्य एवं पर्यावरण-परिस्थितिकी पर भी देखने को मिला है। कृत्रिम उर्वरकों का कुछ हिस्सा ही फसल द्वारा ग्रहण किया जाता है शेष पारिस्थितिक तंत्र में विसरित हो जाता है जो पारिस्थितिकी तंत्र के प्रदूषण का कारक बनता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि इन कृत्रिम उर्वरकों की फसलों द्वारा अधिशोषण की क्षमता बढ़ाई जाए जिससे न केवल कम मात्रा में प्रयोग होने पर भी फसलों को इन रसायनों का उचित लाभ मिल सके बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र में इनका प्रसार भी कम से कम हो सके। इस संदर्भ में मृदा सूक्ष्म जीव अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। प्रस्तुत आलेख में माईकोराइजल कवकों के एक विशेष समूह द्वारा निर्मित ग्लाइको प्रोटीन *ग्लोमालिन* की कृषि में उपयोगिता पर चर्चा की गई है।

भूमिका

मृदा में अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं जो अलग-अलग तरह से मृदा-पादप तंत्र को प्रभावित करते हैं। इन सूक्ष्मजीवियों में एक प्रकार का माईकोराइजल कवक पाया जाता है जो विभिन्न माध्यमों से ना केवल फसल की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक है बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन के लिए भी लाभकारी है। इन माईकोराइजल कवकों के एक विशिष्ट समूह ग्लोमेल्स से ग्लोमालिन नामक ग्लाइको प्रोटीन का निर्माण होता है, जो मिट्टी और जड़ों में अर्बुस्कुलर माईकोराइजल (ए एम) कवक के विजाणुओं और तन्तुओं द्वारा निर्मित होता है। इस ग्लाइकोप्रोटीन की खोज कृषि अनुसंन्धान सेवा की एक वैज्ञानिक सारा एफ राइट द्वारा 1996 मे की गयी थी। माईकोराइजल कवकों का यह समूह मुख्यतः उच्च पादप वर्ग से संबंधित है। यह कवक समूह उच्च पादपों की जड़ों से सबंध स्थापित कर उनकी जड़ों से अपने भोजन के रूप में शर्करा का अवशोषण करता है और बदले में पौधों के लिए आवश्यक मुख्य पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाता है।

उपयोगिता

ग्लोमालिन से संबंधित मृदा प्रोटीन (जीआरएसपी), ह्यूमिक एसिड के साथ, मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ का एक महत्वपूर्ण घटक है और मृदा में नाइट्रोजन फॉस्फोरस एवं अन्य प्रमुख पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाकर फसल उत्पादन बढ़ाने में सहायक है। इन कवकों द्वारा मिलने वाले विशेष लाभ निम्नलिखित हैं- इन कवकों द्वारा निर्मित ग्लाइको प्रोटीन मृदा कणों को आपस में बांधने का काम करती है जिससे मृदा संरचना में सुधार होता है। अच्छी मृदा संरचना मृदा में जल और वायु के संचरण के लिए उपयोगी है। यह प्रोटीन विभिन्न प्रकार के मृदा एंजाइम एवं पादप वृद्धि हार्मोन का समिश्रण होती है। ये मृदा एंजाइम मिट्टी में होने वाली अनेक जैव रासायनिक क्रियाओं मे भाग लेते हैं और मृदा कार्बनिक पदार्थों के अपघटन तथा आवश्यक तत्वों के खनिजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन प्रोटीन में ऑक्सीन, जिबरेलिन जैसे हार्मोन पाये जाते हैं जो पौधों की बढ़वार में आवश्यक हैं साथ ही मृदा रोगाणुओं से पौधों की रक्षा भी करते हैं। यह मृदा प्रोटीन राइजोस्फीयर प्रभाव को बढ़ाने मे सहायक है जिससे मिट्टी मे आवश्यक सूक्ष्म जीवियों की संख्या बढ़ती है। ये सूक्ष्म जीव मृदा कार्बनिक पदार्थों को अपघटित कर प्रमुख पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाकर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से फसल की उत्पादकता बढ़ाने मे सहायक हैं। यह प्रोटीन, गोंद जैसा पदार्थ है जो जल का अवशोषण करती है जिससे मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ती है साथ ही मृदा मे जल लंबे समय तक विधमान रहता है। शुष्क एवं वर्षा सिंचित क्षेत्रों के लिए यह वरदान है। राइजोस्फीयर प्रभाव के कारण मृदा में उपयोगी सूक्ष्म जीवियों की संख्या बढ़ती है जो कृत्रिम उर्वरकों के अवशेषी पदार्थों का अपघटन कर उनके हानिकारक प्रभाव को कम करते हैं और मृदा प्रदूषण को कम करने में सहायक हैं। यह प्रोटीन मृदा कणों को बांधे रखने का कार्य करती है। इस प्रकार यह प्रोटीन मृदा क्षरण और उससे होने वाले पोषक तत्वों के क्षरण को रोकने में सहायक

है। ग्लोमालिन प्रोटीन मृदा कार्बन और नाइट्रोजन का एक भंडारण स्रोत है और कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने में सहायक है।

उपलब्धता एवं प्रयोग विधि

ग्लोमालिन उत्पादक कवक समूह विभिन्न मृदाओं में प्रकृतिक रूप से पाया जाता है किन्तु इसकी विविध उपयोगिता को देखते हुए मृदा में इन कवकों की मात्रा को बढ़ाया जाना लाभकारी है। आजकल बहुत सी जैव उर्वरक बनाने वाली कम्पनियां ग्लोमालिन उत्पादक कवकों को जैव उर्वरक के रूप में बाजार में उपलब्ध करा रही हैं। इन उर्वरकों का 200 ग्राम का एक पैकेट एक हेक्टेयर भूमि के लिए पर्याप्त है। इसका प्रयोग भी अन्य जैव उर्वरकों की ही भांति किया जाता है और इसकी संवर्धन तकनीकी भी अन्य जैव उर्वरकों की भांति सरल है। आवश्यकता पड़ने पर इसको अधिक मात्रा में किसान द्वारा स्वतः ही संवर्धित किया जा सकता है। प्रयोगों में यह देखा गया है कि जिन मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है उन मृदाओं में ग्लोमालिन उत्पादक कवकों की मात्रा भी अधिक होती है अतः इन कवकों की वृद्धि एवं उपयोगिता बढ़ाने के लिए मृदा में पर्याप्त मात्रा में जीवांश होना चाहिए। चूँकि यह सूक्ष्म जीवी समूह उच्च पादप वर्ग से संबंधित है, अतः कृषि वानिकी अपनाकर खेतों में इन सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाई जा सकती है और साथ ही कृषि वानिकी के द्वारा अन्य आर्थिक लाभ भी लिए जा सकते हैं। कृषि वानिकी से वर्ष पर्यंत कटाई छंटाई तथा पतझड़ से जीवांश एकत्र होता रहता है जो इन सूक्ष्म जीवियों के लिए लाभदायक है साथ ही इस जैवांश के अपघटन एवं खनिजीकरण से मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा में भी वृद्दि होती है।

निष्कर्ष

कृत्रिम उर्वरकों के प्रयोग को पूरी तरीके से प्रतिस्थापित तो नहीं किया जा सकता किन्तु जैव कृषि अपनाकर ना केवल खाद्य विषाक्तता से बचा जा सकता है बल्कि पर्यावरण पारिस्थितिकी को प्रदूषण से भी बचाया जा सकता है। जैव उर्वरकों का प्रयोग न केवल कृत्रिम उर्वरकों के प्रयोग को सीमित करता है बल्कि इन कृत्रिम उर्वरकों के अवशेषी प्रभाव को भी कम करता है। जैव उर्वरकों के निरंतर उपयोग से मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि होती है और पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बना रहता है जो टिकाऊ खेती का आधार है। बुंदेलखंड के शुष्क एवं वर्षा सिंचित क्षेत्रों में जहाँ जल की उपलब्धता कम है और मृदा क्षरण की समस्या अधिक है, इस तरह के जैव उर्वरकों का प्रयोग अत्यंत लाभकारी है।

जैविक खेती से कृषि की रक्षा,
आर्थिक लाभ एवं खाद्य सुरक्षा।।

मृदा की उर्वरा क्षमता बढ़ाते जैव उर्वरक

डा. हनुमान सिंह

कृषि महाविद्यालय, हिण्डोली, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

सारांश

मिट्टी की उर्वरता के संरक्षण के लिए यह आवश्यक है कि जैव उर्वरकों के उपयोग के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया जायें। जिससे पर्यावरण हितैषी टिकाऊ खेती को बढ़ावा मिलेगा तथा रासायनिक खेती से जैविक खेती की ओर कदम बढ़ाने में आसानी होगी। वर्तमान में कृषि उत्पादकता बढ़ाना किसान के लिए एक चुनौती जैसा हैं। किसान कम समय में ज्यादा उपज लेने के लिए अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर हो रहा हैं। जिसके कारण मिट्टी की गुणवत्ता पर गलत प्रभाव पड़ रहा हैं। जिससे मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है। मिट्टी में जीवांश की मात्रा घटने से उसकी उपजाऊ शक्ति घटती जा रही हैं। जैव उर्वरकों को रासायनिक उर्वरकों के पूरक के रूप में प्रयोग करके बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रकार

1. **राइजोबियम जैव उर्वरकः-** राइजोबियम कल्चर सर्वाधिक प्रयोग में होने वाला जैव उर्वरक हैं। यह मुख्यतः दलहनी फसलों में ही नत्रजन स्थिरीकरण का कार्य करते हैं। ये जीवाणु लगभग 50 से 135 किलो नत्रजन प्रति हेक्टेयर मृदा में एकत्रित कर सकतें हैं। यह नत्रजन दलहनी फसलों के द्वारा ली जाती हैं जिससे उत्पादन में वृद्धि होती हैं और लगभग 45 से 75 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर भूमि में बच जाती हैं। जो दूसरी फसलों के काम मे आती है। दलहनी फसलों मे अलग-अलग प्रकार की राइजोबियम की प्रजाति सारणी-1 के अनुसार प्रयोग में ली जाती हैं।

सारणी-1. विभिन्न फसलों में उपयोगी राइजोबियम प्रजातियाँ एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण की मात्रा

राइजोबियम प्रजाति	फसलों के नाम	नत्रजन स्थिरीकरण (कि.ग्रा./है.)	औसत उपज में वृद्धि (%)
राइजोबियम मेलिलोटी	रिजका, मेथी, सैंजी	150–100	30
राइजोबियम ट्राइफोली	बरसीम	100–150	30
राइजोबियम लेग्युमिनो	चना, मसूर, मटर	80–110	18
राइजोबियम जैपोनिकम	सोयाबीन	60–80	35

2. **एजोटोबैक्टर जैव उर्वरकः-** ये असहजीवी जीवाणु हैं जो गैर दलहनी फसलों की जड़ों की सतह में स्वतंत्र रूप से रहते हुये वायुमंडलीय नइट्रोजन को नाइट्रेट मे परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध करवातें है। इनके द्वारा साधारणतः 15 से 20 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टर एकत्रित कर सकते हैं। इन जैव उर्वरक के उपयोग से विभिन्न फसलो की उपज वृद्धि का विवरण सारणी-22 में दिया गया है।

सारणी-2. एजोटोबैक्टर के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि

क्र.स.	फसल का नाम	उपज में वृद्धि (प्रतिशत)
1.	गेहूँ	8.2–9.2
2.	जौ	9.0
3.	मक्का	8.0

3. **फॉस्फोरस जैव उर्वरकः-** फॉस्फोरस जैव उर्वरक दो प्रकार के होते हैं-

(अ) फॉस्फोरस विलेय करने वाले जैव उर्वरकः-

पी.एस.बी.:- ये ऐसे सूक्ष्म जीवाणु है, जो जमीन मे उपलब्ध अघुलनशील फॉस्फेट को घुलनशील बनाते है। मृदा में फॉस्फोरस घुलनशील एवं अघुलनशील दोनों अवस्था में पाया जाता है। मृदा में जब रासायनिक उर्वरक के रूप में फॉस्फोरस दिया जाता हैं तब पौधें उसका 10 से 30 प्रतिशत ही उपयोग कर पातें हैं। ये सूक्ष्मजीव अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधे का उपलब्ध करवाते है। इनके प्रयोग से फसल की पैदावार में 10% से 25% की वृद्धि होती हैं।

(ब) फॉस्फोरस अवषोषित करने वाले जैव उर्वरकः-

माइकोराजाः- पौधे की जड़ो व उसके अन्दर पायी जाने वाली

फंजाई का आपसी सहसंबंध होता हैं। जो वैस्कुलर अरबस्कुलर माइकोराइजा कहलाता है। पौधे के अन्दर पाई जाने वाली फंजाई फॉस्फोरस के अवशोषण में मद्द करती है। दलहनी फसलों में माइकोराइजा का राइजोबियम के साथ अनुकुल प्रभाव पड़ता हैं। यह फंजाई अविलेय फॉस्फोरस को विलेय अवस्था में न बदलकर अपितु स्वयं की आवश्यकता की पूर्ति के लिए फॉस्फोरस तथा अन्य पोषक तत्वों को अवशोषण कर पौधे को उपलब्ध करती हैं।

4. नील हरित शैवाल

पानी की सतह पर नीले-हरे रंग की यह शैवाल, सूर्य के प्रकाश में अपना भोजन स्वयं बनाकर, वायुमंडल की नाइट्रोजन को स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध करवाती हैं। इसके द्वारा 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर तक फसल को प्राप्त होती है। इससे 10-15 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि देखी गयी हैं। एक एकड़ खेत में 4 कि.ग्रा. सूखी नील-हरित शैवाल की आवश्यकता पड़ती है। इसके विकास के लिये खेत में 7-8 से.मी. पानी भरा रहना चाहिये।

कैसे करें जैव उर्वरक का प्रयोग

बीज उपचारः 20 से 40 कि.ग्रा. बीज के लिये राइजोबियम का एक पैकेट (200 ग्राम) प्रर्याप्त है। इसके लिए 50-100 ग्राम गुड/शक्कर को 500 मि.ली. पानी में घोल बनाकर उसे गर्म करते हैं व ठंडा कर इसमें जैव उर्वरक को घोलकर, बीज के साथ मिलायें। बीज को छाया में सुखाकर उसी दिन बुआई का कार्य करें।

जड़ उपचारः जैव उर्वरकों का प्रयोग जड़ोपचार के लिए रोपाई वाली फसलों में करते हैं। 4 कि.ग्रा. जैव उर्वरक का 20-25 लीटर पानी में घोल बनायें। एक हैक्टर के लिये पर्याप्त पौध की जड़ों को 20-30 मिनट तक उपरोक्त घोल में डुबोकर रखें। उपचारित पौध को छाया में रखें तथा यथाशीघ्र रोपाई कर दें।

सारणी-3 जैव उर्वरकों की मात्रा एवं संस्तुत प्रयोग विधि

जैव उर्वरक	उपयुक्त फसलें	प्रयोग विधि	आवश्यक मात्रा
राइजोबियम	सभी दलहनी फसलों के लिये	बीजोपचार	200 ग्राम प्रति 10–15 कि.ग्रा. बीज
एजोटोबैक्टर	दलहनी फसलों को छोड़कर अन्य सभी फसलों के लिये	बीजोपचार व मृदा उपचार	200 ग्राम प्रति 10–15 कि.ग्रा. बीज या 5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर
माइकोराइजा	सभी फसलों के लिये	मृदा उपचार	5–7 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर
नीलहरित शैवाल	धान की फसल के लिये	मृदा उपचार	10–12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर

मृदा उपचारः एक हैक्टर भूमि के लिये 200 ग्राम वाले 25 पैकेट जैव उर्वरकों की आवश्यकता पड़ती है। 50 कि.ग्रा. मृदा या 50 कि.ग्रा. कम्पोस्ट खाद मे 5 कि.ग्रा. जैव उर्वरक को अच्छी तरह मिलायें। इस मिश्रण को एक हैक्टर क्षेत्रफल में बुआई के समय या बुआई से 24 घंटे पहले समान रूप से छिडकें। इसे बुआई के समय कूड़ों में भी डाल सकते है।

जैव उर्वरकों से लाभ

- ये अन्य रासायनिक उर्वरकों से अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं, जिससे उत्पादन की लागत घटती है।
- इनके प्रयोग से नाइट्रोजन, घुलनशील फॉस्फोरस आदि की फसल के लिये आवश्यकता बढ़ जाती हैं।
- इससे रासायनिक खाद का इस्तेमाल कम हो जाता है, जिनसे भूमि की मृदा संरचना अच्छी बनी रहती है।
- इनसे पौधों में वृद्धिकारक हार्मोन उत्पन्न होते हैं, जिनसे उनकी बढ़वार पर अच्छा प्रभाव पड़ता हैं।
- जैव उर्वरक के प्रयोग से खेत में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में बढ़ोतरी होती हैं।
- इनसे मृदा तथा पर्यावरण दोनों सुरक्षित रहते हैं।
- मृदा मे कार्बनिक पदार्थों तथा अन्य पौध विकासवर्धक रसायनों जैसे-ऑक्सीजन, जिब्रेलीन, फाइरीडोक्सीन, इंडोल एसिटिक एसिड इत्यादि की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।
- नाइट्रोजनी जैव उर्वरकों के प्रयोग से 20-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रति हैक्टर स्थिरीकरण होता हैं।

जैव उर्वरकों के उपयोग में सावधानियाँ

- नाइट्रोजन जैव उर्वरको के साथ फॉस्फोबैक्टीरिया का प्रयोग अत्यंत लाभकारी है। प्रत्येक दलहनी फसल के अनुरूप ही राइजाबियम कल्चर का क्रय कर प्रयोग करें।
- जैव उर्वरकों को धूप में कभी न रखें, यदि इसे कुछ दिनों के लिये रखना हो, तो मिट्टी के घड़े का उपयोग बहुत अच्छा रहता है।
- फसल विशेष के अनुसार ही उचित जैव उर्वरक का चुनाव करें।
- रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाईयों से जैव उर्वरक को दूर रखें।
- जब बीज को फफूंदनाशक दवा से भी उपचारित करना हो, तो पहले फफूंदनाशक से और फिर जैव उर्वरक से उपचारित करें।

- जैव उर्वरकों की अच्छी कार्यप्रणाली के लिये 20-35 डिग्री. सेल्सियस तापमान अनुकूल रहता हैं। परिवहन के दौरान इन्हें धूप से बचायें। इसके साथ ही पर्याप्त नमी होने पर ही खेत में उपयोग करें।
- जैव उर्वरकों का स्वजीवन 6 माह का होता है अतः प्रभाव समाप्ति अवधि के पूर्व ही फसल अनुसार उपयोग करें।
- जैव उर्वरक को विश्वसनीय जगह से ही खरीदना चाहिए। खरीदते समय उपयोग की अन्तिम तिथि देख लेनी चाहिए। यदि अन्तिम तिथि निकल गई हो, तो कल्चर नहीं खरीदें। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित कर ले कि कल्चर उसी फसल का हो, जो हम बोना चाहते है।

निष्कर्ष

भूमि एक जीवित क्रियाशील तंत्र हैं। इसमें सूक्ष्म जीवों बैक्टीरिया, फफूँद शैवाल एवं प्रोटोजोआ आदि पाये जाते हैं। जैव उर्वरक एक ऐसा उर्वरक हैं जिसमें सूक्ष्म जीव जीवित, सुषुप्तावस्था में कोयले के चूर्ण, चारकोल, लिग्नाइट मिट्टी या रासायनिक पोषक तत्व के माध्यम से विधमान रहते है। जो पौधे के लिए नत्रजन एवं फॉस्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाते हैं। इनके उपयोग से भूमि के भौतिक व जैविक गुणों में सुधार होता हैं व उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती हैं। जैविक उर्वरक के प्रयोग से 30 से 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर भूमि को प्राप्त हो जाती हैं। इससे फसलोत्पादन 10 से 20 प्रतिशत तक बढ़ जाता हैं।

नील हरित शैवाल का उत्पादन

दलहनी फसलों में राइजोबियम का उपयोग

बुंदेलखंड क्षेत्र में जैविक खेती : एक समीक्षा

अमित तोमर एवं वी. डेविड चेल्ला बास्कर

कृषि महाविद्यालय, रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

''अपनी खेती, अपनी खाद''।

''अपना बीज, अपना स्वाद''।

सारांशः

जैविक खेती कृषि की वह पद्धति है, जिसमें पर्यावरण को स्वच्छ प्राकृतिक संतुलन को कायम रखते हुए भूमि, जल एवं वायु को प्रदूषित किये बिना दीर्घकालीन व स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस पद्धति में रसायनों का उपयोग कम से कम व आवश्यकतानुसार किया जाता है। यह पद्धति रसायनिक कृषि की अपेक्षा सस्ती, स्वावलम्बी एवं स्थाई है। इसमें मिट्टी को एक जीवित माध्यम माना गया है। भूमि का आहार जीवांश हैं। जीवांश गोबर, पौधों व जीवों के अवशेष आदि को खाद के रूप में भूमि को प्राप्त होते हैं। जीवांश खादों के प्रयोग से पौधों के समस्त पोषक तत्व प्राप्त हो जाते हैं। साथ ही इनके प्रयोग से उगाई गयी फसलों पर बीमारियों एवं कीटों का प्रकोप बहुत कम होता है जिससे हानिकारण रसायन, कीटनाशकों के छिड़काव की आवश्यकता नहीं रह जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि फसलों से प्राप्त खाद्यान, फल एवं सब्जी आदि हानिकारण रसायनों से पूर्णतः मुक्त होते हैं। जीवांश खाद के प्रयोग से उत्पादित खाद्य पदार्थ अधिक स्वादिष्ट, पोषक-तत्वों से भरपूर एवं रसायनों से मुक्त होते हैं।

जैविक खेती के लिए जीवांश जैसे गोबर की खाद (नैडप विधि) वर्मी कम्पोस्ट, जैव उर्वरक एवं हरी खाद का प्रयोग भूमि में किया जाना आवश्यक है।

प्रस्तावना

नादेप कम्पोस्ट

कम्पोस्ट बनाने का एक नया विकसित तरीका नादेप विधि है जिसे महाराष्ट्र के कृषक नारायण राव पान्डरी पाडे (नाडेप काका) ने विकसित किया है। नादेप विधि में कम्पोस्ट खाद जमीन की सतह पर टांका बनाकर उसमें प्रक्षेत्र अवशेष तथा बराबर मात्रा में खेत की मिट्टी तथा गोबर को मिलाकर बनाया जाता है। इस विधि से 01 किलो गोबर से 30 किलो खाद चार माह में बनकर तैयार हो जाता है। नादेप कम्पोस्ट निम्न प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है।

(1) टांका बनाना

नादेप कम्पोस्ट का टांका उस स्थान पर बनाया जाये जहाँ भूमि समतल हो तथा जल भराव की समस्या न हो। टांका के निर्माण हेतु आन्तरिक माप 10 फीट लम्बी, 6 फीट चौड़ी और 3 फिट गहरी रखनी चाहिए। इस प्रकार टांका का आयतन 180 घन फीट हो जाता है। टांका की दीवार 9 इंच चौड़ी रखनी चाहिए। दीवार को बनाने में विशेष बात यह है कि बीच बीच में यथा स्थान छेद छोड़ जायें जिससे कि टांका में वायु का आवागमन बना रहे और खाद सामग्री आसानी से पक सके। प्रत्येक दो ईटों के बाद तीसरी ईंट की जुड़ाई करते समय 7 इंच का छेद छोड़ देना चाहिए। 3 फीट ऊँची दीवार में पहले, तीसरे छठे और नवें रद्दे में छेद बनाने चाहिए। दीवार के भीतरी व बाहरी हिस्से को गाय या भैंस के गोबर से लीप दिया जाता है। फिर तैयार टांका को सूखने देना चाहिए। इस प्रकार बने टांका में नादेप खाद बनाने के लिए मुख्य रूप से 4 चीजों की आवश्यकता होती है।

पहली

व्यर्थ पदार्थ या कचरा जैसे सूखे हरे पत्ते, छिलके, डंठल, जड़ें, बारीक टहनियां व व्यर्थ खाद पदार्थ आदि। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इन पदार्थों के साथ प्लास्टिक/पॉलीथीन, पत्थर व कांच आदि शामिल न हो। इस तरह के कचरे की 1500 किलोग्राम मात्रा की आवश्यकता होती है।

दूसरी

100 किलोग्राम गाय या भैंस का गोबर या गैस संयंत्र से निकले गोबर का घोल।

तीसरी

सूखी महीन छनी हुई तालाब या नाले की 1750 किलोग्राम मिट्टी। गाय या बैल के बांधने के स्थान की मिट्टी अति उत्तम रहेगी। मिट्टी का पॉलीथीन/प्लास्टिक से रहित होना आवश्यक है।

चौथी

पानी की आवश्यकता काफी हद तक मौसम पर निर्भर करती है। बरसात में जहाँ कम पानी की आवश्यकता रहेगी। वहीं पर गर्मी के मौसम में अधिक पानी की आवश्यकता होगी। कुल मिलाकर

करीब 1500 से 2000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। गोमूत्र या अन्य पशु मूत्र मिलादेने से नादेप खाद की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होगी।

(2) टांका का भरना

टांका भरते समय विशेष ध्यान देना चाहिए कि इसके भरने की प्रक्रिया एक ही दिन में समाप्त हो जाये। इसके लिए आवश्यक है कि कम से कम दो टैंकों का निर्माण किया जाये जिससे कि सभी सामग्री इकट्ठा होने पर एक ही दिन में टैंक भरने की प्रक्रिया पूरी हो सके। टैंक भरने का क्रम निम्न प्रकार है।

पहली परत

व्यर्थ पदार्थों की 6 इंच की ऊँचाई तक भरते हैं। इस प्रकार व्यर्थ पदार्थों की 30 घन फुट में लगभग एक कुन्तल की जरूरत होती है।

दूसरी परत

गोबर के घोल की होती हैं इसके लिए 150 लीटर पानी में 4 किलोग्राम गोबर अथवा बायोगैस संयंत्र से प्राप्त गोबर के घोल की ढाई गुना ज्यादा मात्रा में प्रयोग में लाती है। इस घोल की व्यर्थ पदार्थों द्वारा निर्मित पहली परत पर अच्छी तरह से भीगने देते हैं।

तीसरी परत

छनी हुई सूखी मिट्टी की प्रति परत आधा इंच मोटी दूसरी परत के ऊपर बिछा कर समतल कर लेते है।

चौथी परत

इस परत को वास्तव में परत न कहकर पानी की छींटें कह सकते हैं। इस लिए आवश्यक है कि टैंक में लगायी गयी परतें ठीक से बैठ जायें।

इस क्रम को क्रमशः टांका के पूरा भरने तक दोहराते हैं। टैंक भर जाने के बाद अन्त में 2.5 फुट ऊँचा झोपड़ी नुमा आकार में भराई करते हैं। इस प्रकार टैंक भर जाने के बाद इसकी गोबर व गीली मिट्टी के मिश्रण से लेप कर देते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि 10 या 12 परतों में गड्ढा भर जाता है। यदि नादेप कम्पोस्ट की गुणवत्ता में अधिक वृद्धि करती है तो आधा इंच मिट्टी की परतों के ऊपर 1.5 किलोग्राम जिप्सम 1.5 किलोग्राम राक फॉस्फेट + एक किग्रा. यूरिया का मिश्रण बनाकर सौ ग्राम प्रति परत बिखेरते जाते हैं। टांका भरने के 60 से 70 दिन बाद राइजोबियन + पी.एस.बी. + एजोटोबैक्टर का कल्चर बनाकर मिश्रण को छेदों के द्वारा प्रविष्ट करा देते हैं।

टांका भरने के 15 से 20 दिनों बाद उसमें दरारे पड़ने लगती हैं तथा इस विघटन के कारण मिश्रण टैंक में नीचे की ओर बैठने लगता है। ऐसी अवस्था में इसे उपरोक्त बताई गई विधि से दुबारा भरकर मिट्टी एवं गोबर के मिश्रण से उसी प्रकार लीप दिया जाये जैसा कि प्रथम बार किया गया था। यह आवश्यक है कि टांका में 60 प्रतिशत नमी का स्तर हमेशा बना रहे। इस तरह से नादेप कम्पोस्ट 90 से 110 दिनों में बनकर प्रयोग हेतु तैयार हो जाती है। लगभग 3.0 से 3.25 टन प्रति टैंक नादेप कम्पोस्ट बनकर प्राप्त होती है तथा इसका 3.5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से खेतों में प्रयोग करना पर्याप्त होता है। इस कम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा नत्रजन के रूप में 0.5 से 1.5 फॉस्फोरस के रूप में 0.5 से 0.9 तथा पोटाश के रूप में 1.2 से 1.4 प्रतिशत तक पायी जाती है। नादेप टांका 10 वर्ष तक अपनी पूरी क्षमता से कम्पोस्ट बनाने में सक्षम रहता है।

नादेप कम्पोस्ट बनाने हेतु प्रति टांका निर्माण में लगभग दो हजार रूपये की लागत आती है। यदि 6 टांका का निर्माण कर अन्तराल स्वरूप एक टांका भरकर कम्पोस्ट बनाई जाये तो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले व शिक्षित बेरोजगारों को चार हजार रूपये प्रति माह के हिसाब से आर्थिक लाभ हो सकता है।

2. वर्मी कम्पोस्ट-एक उत्तम जैविक खाद

वर्मी कम्पोस्ट निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका केचुओं की है जिसके द्वारा कार्बनिक/जीवांश पदार्थों को विघटित करके/सड़ाकर यह खाद तैयार की जाती है। यही वर्मी कम्पोस्ट या केंचुए की खाद कहलाती है।

वर्मी कम्पोस्टिंग कृषि के अवशिष्ट पदार्थ, शहर तथा रसोई के कूड़े कचरे को पुनः उपयोगी पदार्थ में बदलने तथा पर्यावरण प्रदूषण को कम करने की एवं प्रभावशाली विधा है। वर्मी कम्पोस्ट बनाने में किन-किन कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग किया जा सकता है।

(अ) कृषि या फसल अवशेष

पुवाल, भूसा, गन्ने की खाई, पत्तियाँ, खरपतवार, फूस, फसलों के डंठल, बायोगैस अवशेष, गोबर आदि।

(ब) घरेलू तथा शहरी कूड़ा कचरा

सब्जियों के छिलके तथा अवशेष, फलों के छिलके तथा अवशेष, फलों के छिलके तथा सब्जी मण्डी का कचरा, भोजन का अवशेष आदि।

(स) कृषि उद्योग सम्बन्धी व्यर्थ पदार्थ

वनस्पति तेल शोध मिल, चीनी मिल, शराब उद्योग, बीज तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग तथा नारियल उद्योग के अवशिष्ट पदार्थ।

केचुओं की प्रजातियां

कम्पोस्ट बनाने की सक्षम प्रजातियों में मुख्य रूप से 'इसेनिया फोटीडा' तथा 'इयू ड्रिल्स इयूजीनी' है जिन्हें केचुऐं की लाल प्रजाति भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त 'पेरियानिक्स एक्सवकेटस', 'लैम्पीटो माउरीटी', 'डावीटा कलेवी' तथा डिगोगास्टर बोलाई प्रजातियाँ भी है जो कम्पोस्टिंग में प्रयोग की जाती हैं परन्तु ये लाल केचुओं से कम प्रभावी है।

वर्मी कम्पोस्ट कैसे बनाये

किसी ऊँचे छायादार स्थान जैसे पेड़ के नीचे या बगीचे में 2 मीटर × 2 मीटर × 2 मीटर क्रमशः लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई का गड्ढा बनायें। गड्ढे के अभाव में इसी माप की लकड़ी या प्लास्टिक की पेटी का भी प्रयोग किया जा सकता है। जिसके निचले सतह पर जल निकास हेतु 10-12 छेद बना देने चाहिए।

क- सबसे नीचे ईंट या पत्थर की 11 सेमी. की परत बनाइये फिर 2.0 सेमी. मौरंग या बालू की दूसरी तह लगाइये। इसके ऊपर 15 सेमी. उपजाऊ मिट्टी की तह लगाकर पानी के हल्के छिड़काव से नम कर दें। इसके बाद अधसड़ी गोबर डालकर एक किलो प्रति गड्ढे की दर से केचुएं छोड़ दें।

ख- इसके ऊपर 5-10 सेमी. घरेलू कचरे जैसे सब्जियों के अवशेष, छिलके आदि कटे हुए फसल अवशेष जैसे पुवाल, भूसा, जलकुंभी पेड़ पौधों की पत्तियाँ आदि को बिछा दें। 20-25 दिन तक आवश्यकतानुसार पानी का हल्का छिड़काव करते रहें इसके बाद प्रति सप्ताह दो बार 5-10 सेमी. सडने योग्य कूड़े कचरे की तह लगाते रहें जब तक कि पूरा गड्ढा भर न जाये। रोज पानी का छिड़काव करते रहें। कार्बनिक पदार्थ के ढेर पर लगभग 50 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। 6-7 सप्ताह में वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाता है। वर्मी कम्पोस्ट बनने के बाद 2-3 दिन तक पानी का छिड़काव बन्द कर देना चाहिए। इसके बाद खाद निकाल कर छाया में ढेर लगाकर सूखा देते हैं। फिर इसे 2 मिली. छन्ने से छानकर अलग कर लेते हैं। इस तैयार खाद में 20-25 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। इस तैयार खाद को आवश्यक मात्रा में प्लास्टिक की थैलियों में भर देते है। इसके अतिरिक्त वर्मी कम्पोस्ट का निर्माण वायु पंक्ति (विन्डरो)। विधि से भी किया जा सकता है जिसमें जीवांश पदार्थ का ढ़ेर किसी छायादार जमीन की सतह पर लगाकर किया जाता है वर्मी कम्पोस्ट का निर्माण 'रियेक्टर' विधि से किया जाता है जो अधिक खर्चीला तथा तकनीकी है। ऊपरी बतायी गयी विधि अत्यन्त सरल है तथा किसान आसानी से अपना सकता है।

केंचुए का कल्चर या इनाकुलम तैयार करना

केंचुए कूड़े कचरे के ढेर के नीचे से कम्पोस्ट बनाते हुए ऊपर की तरफ बढ़ते हैं पूरे गड्ढे भी कम्पोस्ट तैयार होने के बाद ऊपरी सतह पर कूड़े कचरे की एक नयी सतह लगा देते हैं तथा पानी छिड़क कर नम कर देते है। इस सतह की ओर सभी केंचुएं आकर्षित हो जाते हैं। इन्हें हाथ या किसी चीज से अलग कर इकट्ठा कर लेते है जिसे दूसरे नये गड्ढे में अन्तः क्रमण के लिए प्रयोग करते है।

वर्मी कम्पोस्ट के पोषक तत्व

वर्मी कम्पोस्ट के अन्य जीवांश खादों की तुलना में अधिक पोषक तत्व उपलब्ध है। इसमें नाइट्रोजन 1-1.5 प्रतिशत, फॉस्फोरस 1.5 प्रतिशत तथा पोटाश 1.5 प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त इसमें द्वितीयक तथा सूक्ष्म तत्व भी मौजूद होते है।

वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग

धान्य फसलों, तिलहन तथा सब्जियों के लिए 5.0 से 6.0 टन वर्मी कम्पोस्ट प्रति हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए। बुवाई के पहले इसे खेत में बिखेर कर जुताई करके भूमि में मिला देना चाहिए। फलदार वृक्षों में 200 ग्राम प्रति पौधा तथा घास के लान में 3 किग्रा./10 वर्ग मीटर की दर से प्रयोग करें।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ

- मृदा के भौतिक तथा जैविक गुणों में सुधार होता है।
- मृदा संरचना तथा वायु संचार में सुधार हो जाता है।
- नाइट्रोजन स्थरीकरण करने वाले जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है।
- कूड़े कचरे से होने वाले प्रदूषण पर नियंत्रण होता है।
- वर्मी कम्पोस्ट एक लघु कुटीर उद्योग के रूप में रोजगार के नये अवसर प्रदान करता है।
- यह रसायनिक उर्वरक की खपत कम करके मृदा स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने का प्रभावी उपाय है।

3. जैव उर्वरक

जैव उर्वरक विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं का एक विशेष प्रकार के माध्यम, चारकोल, मिट्टी या गोबर की खाद में ऐसा मिश्रण है जो कि वायु मण्डलीय नत्रजन को चागिकीकरण द्वारा पौधों को उपलब्ध कराती है या मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराता है। जैव उर्वरक रसायनिक उर्वरकों का विकल्प तो नहीं है परन्तु पूरक अवश्य है। इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की 1/3 मात्रा तक की बचत हो जाती है।

जैव उर्वरकों का वर्गीकरण

1. नाइट्रोजन पूर्ति करने वाले जैव उर्वरक
   - अ. राइजोबियम जैव उर्वरक
   - ब. एजोटोवैक्टर
   - स. एजोस्पाइरिलम
   - द. नील हरित शैवाल
2. फॉस्फोरसधारी जैव उर्वरक (पी.एस.बी.)

अ) राइजोबियम जैव उर्वरक

यह जीवाणु सभी दलहनी फसलों व तिलहनी फसलों जैसे सोयाबीन और मूंगफली की जड़ों में छोटी-छोटी ग्रन्थियों में पाया जाता है जो सह जीवन के रूप में कार्य करें वायु मण्डल में उपलब्ध नाइट्रोजन को पौधों को उपलब्ध कराता है। राइजोबियम जीवाणु अलग-अलग फसलों के लिए अलग-अलग होता है। इसलिए बीज उपचार हेतु उसी फसल का कल्चर प्रयोग करना चाहिए।

ब) एजोटोवैक्टर

यह भी एक प्रकार का जीवाणु है जो भूमि में पौधे की जड़ की सतह पर स्वतंत्र रूप में रहकर ऑक्सीजन की उपस्थिति में वायुमण्डलीय नत्रजन को अमोनिया में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराता है। इसके प्रयोग से फसलों की उपज में 10-15 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है। इसका प्रयोग सभी तिलहनी, अनाज वाली, सब्जी वाली फसलों में किया जा सकता है।

स) एजोस्पाइरिलम

यह भी एक प्रकार का जीवाणु है जो पौधों की जड़ों के पास रहकर, वायुमण्डल में उपलब्ध नाइट्रोजन पौधों को उपलब्ध कराता है इसका प्रयोग अनाज की चौड़ी पत्ती वाली फसलों जैसे ज्वार, गन्ना तथा बाजरा आदि में किया जाता है।

द) नील हरित शैवाल

नील हरित शैवाल भारत जैसे गर्म देशों की क्षारीय तथा उदासीन मिट्टियों में अधिकता से पाई जाती है। इसकी कुछ प्रजातियों वायुमण्डल में उपलब्ध नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित करके पौधों को नत्रजन उपलब्ध कराती है। नील हरित शैवाल का प्रयोग केवल धान की फसल में किया जा सकता है। रोपाई के 8-10 दिन बाद दस किलोग्राम प्रति हे. हिसाब से खड़ी फसल में छिड़का जाता है। तीन सप्ताह तक खेत में पानी भरा रहना आवश्यक है। इसके प्रयोग से धान की खेती में लगभग 25-30 किग्रा. नाइट्रोजन अथवा 50-60 किग्रा. यूरिया प्रति हेक्टेयर की बचत की जा सकती है।

फॉस्फोरसधारी जैव उर्वरक

यह जीवित जीवाणु तथा कुछ कवकों का चारकोल, मिट्टी अथवा गोबर की खाद में मिश्रण है जो मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील सभी प्रकार की फसलों में किया जा सकता है और लगभग 15-20 किग्रा. प्रति हे. फॉस्फोरस की मात्रा की बचत की जा सकती है।

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि

1) बीज उपचार विधि

जैव उर्वरकों के प्रयोग की यह सर्वोत्तम विधि है। 1/2 लीटर पानी में लगभग 50 ग्राम गुड़ या गोंद उबालकर अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते है इस घोल को 10 किग्रा. बीज पर छिड़क कर मिला देते हैं जिससे प्रत्येक बीज पर इसकी परत चढ़ जाये। तब जैव उर्वरक को छिड़क कर मिला दिया जाता है। इसके उपरान्त बीजों को छायादार जगह में सुखा लेते हैं। उपचारित बीजों की बुवाई सूखने के तुरन्त बाद कर देनी चाहिए।

2) पौध जड़ उपचार विधि

धान तथा सब्जी वाली फसलें जिनके पौधों की रोपाई की जाती है जैसे टमाटर, फूलगोभी, पातगोभी, प्याज इत्यादि फसलों में पौधों की जड़ों को जैव उर्वरकों द्वारा उपचारित किया जाता है। इसके लिए किसी चौड़े व छिछले बर्तन में 5-7 लीटर पानी में एक किलोग्राम जैव उर्वरक मिला लेते है। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों को उखाड़कर तथा जड़ों से मिट्टी साफ करने के पश्चात् 50-100 पौधों को बण्डल में बांधकर जीवाणु खाद के घोल में 10 मिनट तक डुबो देते हैं। इसके बाद तुरन्त रोपाइ कर देते है।

3) कन्द उपचार विधि

गन्ना, आलू, अदरक, घुइया जैसे फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग हेतु कन्दों को उपचारित किया जाता है। एक किलोग्राम जैव उर्वरक को 20-30 लीटर घोलकर मिला लेते हैं। इसके उपरान्त कन्दों को 10 मिनट तक घोल में डुबोकर रखने के पश्चात् बुवाई कर देते है।

4) मृदा उपचार विधि

5-10 किलोग्राम जैव उर्वरक 70-100 किग्रा. मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण तैयार करके अन्तिम जुताई में खेत मिला देते है।

जैव उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियाँ

- जैव उर्वरक को हमेशा धूप या गर्मता से बचा कर रखना चाहिए।
- कल्चर पैकेट उपयोग के समय ही खोलना चाहिए।

- कल्चर द्वारा उपचारित बीज, पौध, मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण छाया में ही रखना चाहिए।
- कल्चर प्रयोग करते समय उस पर उत्पादन तिथि, उपयोग की अन्तिम तिथि फसल का नाम आदि अवश्य लिखा देख लेना चाहिए।
- निश्चित फसल के लिए अनुमोदित कल्चर का उपयोग करना चाहिए।

जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभ

- रासायनिक उर्वरक एवं विदेश मुद्रा की बचत।
- लगभग 25-30 किग्रा./हे. नाइट्रोजन एवं 15-20 किग्रा. प्रति हेक्टर पर फॉस्फोरस उपलब्ध कराना तथा मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में सुधार लाना।
- विभिन्न फसलों में 15-20 प्रतिशत उपज में वृद्धि करना।
- इसके प्रयोग से अंकुरण शीघ्र होता है तथा कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है।
- इनके प्रयोग से उपज में वृद्धि के अतिरिक्त गन्ने में शर्करा की तिलहनी फसलों में तेल की तथा मक्का एवं आलू में स्टार्च की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है।
- किसानों को आर्थिक लाभ होता है।

4. हरी खाद एवं उसकी उपयोगिता

मिट्टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि हेतु पौधों के हरे वानस्पतिक को उसी खेत में उगाकर या दूसरे स्थान से लाकर खेत में मिला देने की क्रिया को हरी खाद देना कहते है।

हरी खाद प्रयोग करने की विधियाँ

- **उसी खेत में उगाई जाने वाली हरी खादः** जिस खेत में खाद देनी होती हैं, उसी खेत में फसल उगाकर उसे मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर मिट्टी में मिलाकर किया जाता है। इस विधि से हरी खाद तैयार करने के लिए सनई, ढैंचा, ग्वार, मूँग, उर्द आदि फसलें उगाई जाती हैं।
- **खेत में दूर उगाई जाने वाली हरी खादः** जब फसलें अन्य दूसरे खेतों में उगाई जाती हैं और वहाँ से काटकर जिस खेत में हरी खाद देना होता है, उसमें मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर दबा देते हैं। इस विधि में जंगलों या अन्य स्थान पर उगे पेड़ पौधों एवं झाड़ियों की पत्तियों टहनियों आदि को खेत में मिला दिया जाता हैं।
- हरी खाद हेतु प्रयोग की जाने वाली फसलें सनई, ढैंचा, मूंग, उर्द, मोठ, ज्वार, लोबिया, जंगली, नील बरसीम एवं सैंजी आदि।

हरी खाद से लाभ

- हरी खाद से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा से भौतिक दशा में सुधार होता है।
- नाइट्रोजन की वृद्धि हरी खाद के लिए प्रयोग की गई दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियां होती है। जो नत्रजन का स्थिरीकरण करती हैं। फलस्वरूप नत्रजन की मात्रा में वृद्धि होती है। एक अनुमान लगाया गया है कि ढैंचा को हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से प्रति हेक्टेयर 60 किग्रा. नाइट्रोजन की बचत होती है तथा मृदा के भौतिक रासायनिक तथा जैविक गुणों में वृद्धि होती है, जो टिकाऊ खेती के लिए आवश्यक है।

5. एकीकृत कीट एवं व्याधि नियंत्रण

जैविक खेती का लक्ष्य कीड़ों का विनाश करना नहीं है किन्तु उनका आर्थिक स्तर पर नियंत्रण करना है। इसके लिए स्वस्थ कृषि, परजीवी कीड़ों, फिरोमोन व प्रकाश प्रपंच कीट भक्षी पक्षियों, कीट विनाशक रोगों, मेढ़क आदि का उपयोग समन्वित रूप से किये जाने के प्रयोग सफल हुए है। नीम की पत्ती, बीजों की खली एवं तेल का प्रयोग कीटनाशक के रूप में किया जा सकता है। वैज्ञानिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि गोमूत्र एवं नीम की पत्ती का अर्क बनाकर भी कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

6. बायो एजेंट्स/बायो पेस्टीसाइड्स का प्रयोग

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन के अन्तर्गत बायो एजेंट्स/बायो पेस्टीसाइड्स का समावेश हो जाने के कारण विभिन्न फसलों को कीट/रोग से सुरक्षा में पर्याप्त सफलता प्राप्त हो रही है। जिन क्षेत्रों में इनका प्रयोग हो रहा है वह न केवल उत्पादन में वृद्धि हुई है, अपितु मानव एवं पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने में पर्याप्त सफलता मिली है।

तना/फली छेदक कीट से फसलों की रोकथाम हेतु ट्राइकोकार्ड एवं एन.पी.वी. के प्रयोग से काफी लाभ मिला है इससे न केवल खाद्यान दलहनी एवं तिलहनी फसलों को लाभ हुआ है अपितु गन्ना एवं सब्जियों पर भी इसका प्रयोग लाभप्रद रहा है। उकठा, जड़ गलन, तना गलन तथा अन्य फफूँदीजनित रोगों के उपचार हेतु ट्राइकोर्डमा का प्रयोग व्यापक स्तर पर प्रारम्भ हुआ है तथा बीज शोधन में भी इसका उपयोग दिनो दिन बढ़ रहा है। प्रदेश की विभागीय आई.पी.एम. प्रयोगशालाओं में ट्राइकोर्डमा, ब्यूवेरिया, बैसियाना, सूडोमोनास, मेन्टाराइजियम तथा एन.पी.वी. आदि बायोएजेन्ट्स उत्पादित किये जा रहे है। जिनका उपयोग विभाग द्वारा संचालित योजनाओं के अर्न्तगत आयोजित प्रदर्शनों तथा विकास कार्यों में किया जाता है।

नीम का तेल एवं बी.टी. बायोपेस्टीसाइड्स के रूप में उपलब्ध है तथा इनका प्रयोग विभिन्न कीट/रोगों के नियंत्रण/प्रबन्धन करने के लिए किया जाता है। देश में इनकी पर्याप्त उपलब्धता है। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत इनका प्रयोग सुनिश्चित कराया जाये। बायो एजेण्ट्स/बायो पेस्टीसाइड्स के व्यापक प्रचार पर समुचित बल दिया जाये।

निष्कर्ष

जैसा की हम सब जानते हैं कि की भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारी संस्कृति, सभ्यता प्राचीन काल से ही प्रकृति के प्रति समर्पित रही हैं तथा प्राकृतिक संसाधनों का उचित तरीके से उपयोग करना हमारी पुरानी प्रथा रही हैं इसलिए भारत का इतिहास हमेशा से ही इस बात का गवाह रहा हैं की हम सब मिलकर भारत देश को एक कृषि आधारित व्यापार से जोड़ने तथा आत्मनिर्भर भारत की कल्पना कर सकते हैं। हरित क्रांति के बाद से लेकर अब तक कृषि में इस्तेमाल होने वाले रसायनों से मिट्टी की उर्वरता के साथ-साथ फसलों की गुणवत्ता में भी कमी आई हैं। पिछलें 50 सालों से लेकर अब तक कृषि में इस्तेमाल होने वाले रसायनों से किसानों की आय में तो वृद्धि हुई हें लेकिन उसके साथ-साथ फसलों की गुणवत्ता में भी कमी आई हैं, क्योंकि जैव उर्वरकों का इस्तेमाल करना किसान भाईयों ने बहुत कम कर दिया था। लेकिन अब फिर से किसान भाई ने जैव उर्वरकों का अधिक से अधिक इस्तेमाल करना शुरू कर दिया हैं। जिससे की वो अपनी आय को दोगुना तो कर ही सकतें हैं। साथ ही साथ अपनी फसलों की गुणवत्ता में भी सुधार ला सकतें हैं। इस प्रकार से भारत में फिर से जैविक खेती का ज्यादा से ज्यादा प्रचार एवं प्रसार कर सकतें हैं और जैव संसाधनों का उचित इस्तेमाल कर फसलों की गुणवत्ता को भी सुधारा जा सकता हैं। जैविक खादों में मुख्यता जीवांश खाद्य, कम्पोस्ट की खाद्य, हरी खाद्य, केंचुआ खाद्य, इत्यादि के इस्तेमाल से मिट्टी की गुणवत्ता को सुधार जा सकता हैं।

जैविक पशुपालन–एक उभरता व्यवसाय

पवन कुमार माहोर

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर

सारांशः

जैविक पशुपालन एक उत्पादन प्रणाली है जिसका तात्पर्य कृत्रिम आदान या निवेश जैसे रासायिनक दवाएं, संवर्द्धित पशुचारा और अनुवंशिकी अभियंत्रिकी प्रजनन के प्रयोग से बचना है। जैविक पशुधन उत्पादन के लिए उत्पादको की आवश्यकता निवारक स्वास्थ्य देखभाल को सुनिश्चित करने के लिए जैविक प्रबंधन, पशु व्यवहार की सही समझ पर आधारित होना चाहिए। विकिसत देशों में जैविक प्रणाली की तेजी से आवश्यकता बढ़ रही है क्योंकि जानवरों को रासायिनक चारे के बजाय केवल चारागाह पर ही प्रयोग किया जा रहा है। आज जैविक पशुधन उत्पादन की मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। लोग कई गुना मूल्य देकर भी जैविक पशुधन उत्पाद जैसे की दूध, अंडा, मांस इत्यादि के लिए देने को तैयार हैं। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में किसान जैविक कृषि पशुधन सह कृषि का उत्पादन करके ज्यादा से ज्यादा आमदानी प्राप्त कर सकते है। जैविक पशुधन उत्पादन एक प्रकार का खाद्य तंत्र है जिसमें पशुओं के कल्याण, पर्यावरण सुरक्षा, न्यूनतम मात्रा में औषिधियों का प्रयोग और हानिकारक तत्वों के बिना उत्पादन होता है। जैविक तंत्र इस तरह से विकिसत किया जाता है की जिसमें पशुओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि एवं पशुओं के सुख और आराम में वृद्धि हो।

जैविक पशुपालन की परिभाषा के अंतर्गत पशुधन उत्पादन की प्रणाली के पारिस्थितिक तंत्र के जैविक और जैव अपघटनीय आदान या इनपुट, पशु पोषण, पशु स्वास्थ्य, पशु आवास और पशु प्रजनन सम्मिलित है। जैविक पशुपालन का तात्पर्य कृत्रिम आदान या इनपुट जैसे केमिकल्स, संवर्धित पशु चारा और अनुवांशिक अभियांत्रिकी प्रजनन के उपयोग से बचना है। जैविक पशुधन खेती से संलग्न नहीं है जबकि पारंपरिक खेती में पशुधन अनिवार्य रूप से खेती के साथ संलग्न है। पारंपरिक कृषि प्रणाली में कम आदान या इनपुट से कम उत्पादन के साथ जीवन निर्वाह होता है। मानक स्थापित करना जैविक उत्पादन के लिए मूलभूत आवश्यकता है। जैविक पशुधन उत्पादन के लिए उत्पादकों की आवश्यकता निवारक स्वास्थ्य देखभाल को स्थापित करने के लिए जैविक प्रबंधन पशु व्यवहार की सही समझ पर आधारित होना चाहिए। विकसित देशों में जैविक प्रणाली की तेजी से आवश्यकता है कि जानवरों को चरागाह पर आश्रित रखा जाना चाहिए। जैविक उत्पादों या पारंपरिक उत्पादों का निर्यात विकासशील देश चाहते हैं। विकासशील देशो को अभी स्वीकार्य विकसित करने होंगे। जैविक पशुधन उत्पादन के मामले में बेहतर पशु स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त करने की की जरूरत है। जैविक

खेती के संभावित लाभों का दोहन करने के लिए जैविक प्रशिक्षकों/ सलाहकारों और किसानों दोनों के लिए जैविक उत्पादन में प्रशिक्षण की जरूरत है। जैविक प्रणाली खाद्य उत्पादों की शुद्धता और उत्तम गुणवत्ता का प्रतीक है तथा यह मान्यता प्राप्त प्रमाणन एजेंसियों द्वारा प्रमाणित हो। आईसीएआर ने भी इसे बढ़ावा देने योग्य कृषि उत्पादन की प्रणाली के रूप में मान्यता दी है।

कृषि प्रणाली में जैविक पशुपालन इकाई स्थापित करते समय ध्यान देने योग्य बाते

खेत जैविक प्रबंधन के अनुसार संचालित होगा और प्रमाणीकरण आवश्यक होगा। पशुओं को वह चारा नहीं खिलाया जाना चाहिए जिसमे वृद्धि हार्मोन और अन्य एडिटिव्स होते हैं कृत्रिम पदार्थ की नगण्य मात्रा के साथ निर्धारित मानकों का पालन करना होगा। पशुशाला से निकले कचरे को अन्य पशुओं को चारे के रूप में खिलाने से बचे। खेतों में उपयोग से पहले पशु खाद को ठीक से तैयार कर ले। पशुओं का चयन प्रजनन के आधार पर रोगों और कीटों के प्रतिरोध पर करना चाहिए। केवल हर्बल और प्राकृतिक विधि से उपचार करना चाहिए। खेत से अधिकतर उत्पादन करने का प्रयास करना चाहिए। संदूषण से बचने के लिए खेत से फ़ीड करना चाहिए।

जैविक पशुधन प्रणाली की प्राथमिक विशेषताएं

जैविक पशुपालन एक उत्पादन प्रणाली हैं। अच्छी तरह से परिभाषित सत्यापित मानक उपयोग में लिए जाते है। पशु कल्याण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। ग्रोथ रेगुलेटर्स, पशु ऑफल, रोगनिरोधी, एंटीबायोटिक्स या कोई एडिटिव्स नियमित उपयोग नहीं होता है। पशु आहार का कम से कम 80 प्रतिशत जैविक मानकों के अनुसार कृत्रिम उर्वरको या पीड़कनाशको का बिना उपयोग किये उगाया जाता है।

जैविक पशुधन उत्पादन की कुंजी

पशुधन का जन्म पूर्व प्रबंध एवं जैविक सुरक्षा

सभी पशुधन के उत्पाद जो बेचे जाते हैं उन्हें जैविक के रूप में लेबल या विज्ञापित करवाना चाहिए। तथा उनका जैविक प्रबंधन गर्भाअवस्था या हैचिंग के अंतिम एक तिहाई समय से करना प्रारम्भ कर दे। नये पशुओं को ऐसे फर्म से खरीदना चाहिये। जहाँ पर बीमारियों की वर्तमान स्थिति का पता हो अथवा जिनके पास संक्रामक बीमारियों से मुक्त होने का प्रमाण पत्र हो। पशुओं को सीधे ही जैविक फर्म से खरीदना चाहिये ना कि खुले बाजार अथवा पशु मंडियों से। नए पशुओं को बाड़े में शामिल करने से पहले 4 हफ्तों तक क्वारंटाइन करना चाहिये। नए पशुओं को अलग रखने के दौरान सभी पशुओं के थनों को थनैला रोग अथवा दूसरे रोगों की जाँच कर लेना चाहिए।

पशु पोषण एवं व्यवस्थित चराई

पशुओं की खाद्य सामग्री जो जैविक प्रबंधन के तहत उत्पादित होती हैं को जैविक कृषि उत्पादों से युक्त होना चाहिए जिसमें जैविक रूप से व्यवस्थित और उत्पादित होना चाहिए। इसमें चारागाह, चारा और फसलें कुछ गैर-सिंथेटिक और सिंथेटिक पदार्थों को फ़ीड एडिटिव्स के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। और पूरक पोषण के लिए फ़ीड का बीस प्रतिशत डेयरी पशु जो नौ महीने से कम उम्र के हैं गैर-जैविक स्रोतों से पूरा करने की अनुमति हैं। प्लास्टिक छर्रों, यूरिया, खाद और उप-उत्पाद स्तनधारी या मुर्गी वध से प्राप्त आहार की अनुमति नहीं हैं। बछड़ों को जैविक दूध लगभग 3 माह की उम्र तक देना चाहिए। पोषण तंत्र इस प्रकार का हो कि चारागाह का पूर्ण उपयोग हो और चारागाह तक पहुँच सुलभ हो। पशु आहार में आनुवांशिक अभियांत्रिकी से तैयार जीवाणु, प्रतिजैविक (एंटीबायोटिक), दूसरी दवा, हार्मोन्स और वृद्धि कारक तत्व आदि का प्रयोग नहीं होना चाहिये। अगर चारा, घर में उत्पादित हो तो उसके पोषक तत्वों में क्या कमी है। इसका पता होना चाहिये, खासतौर से जहाँ मिट्टी में पोषक तत्व कम पाये जाते है। चारे और खून में पोषक तत्वों की कमी का प्रयोगशाला में पता करके ही उपचार लेना चाहिये। इन पोषक तत्वों की पूर्ति इंजेक्शन, गोली अथवा खनिज तत्वों की ईंट के द्वारा कर सकते है। जब घर पर उगाये गए चारे अथवा मिट्टी में कुछ पोषक तत्वों की कमी हो तो ही खनिज लवण पशुओं को देना चाहिये। कैल्शियम और मैग्नीशियम को खिलाने की अनुमति होती है। स्वच्छ चराई की नीति का उद्देश्य अन्तःपरजीवियों के संक्रमण की संभावना को कम करना है।

अन्तःपरजीवियों के खतरे को हम 3 से 4 बार चराई कराके कम कर सकते है। जो पशु रोगों के प्रति ज्यादा संवेदनशील हो उन्हें पहले चराना चाहिये। जो भेड़े जुड़वा बच्चों को जन्म देती हो उनको पहले चराना चाहिये। वयस्क पशुओं को छोटे पशुओं से पहले चराना चाहिए। जानवरों को कम से कम 30% शुष्क पदार्थ का सेवन चराई के मौसम के दौरान चरागाह से करना चाहिए न केवल जानवरों की बाहर चराई होना चाहिए बल्कि वह चरागाह को अच्छी तरह से प्रबंधित किया जाना चाहिए ताकि यह उनके पोषण में महत्वपूर्ण जैविक विकल्प के रूप में उपलब्ध हो सके।

पशु अपशिष्ट प्रबंधन

इस हेतु जैविक पशुपालन से जैविक खाद तैयार करने पर बल देना चाहिए। ताकि बिना मृदा एवं जल प्रदूषण के पोषक तत्वों का पुनः चक्रण हो पाए। जैविक पशुधन उत्पादकों को खाद का प्रबंधन करना अनिवार्य है।

पशु स्वास्थ्य

जैविक पशुधन उत्पादन उत्पादकों को देखभाल क्रियाओं से निवारक स्वास्थ्य स्थापित करने की आवश्यकता है। इन क्रियाओं में उपयुक्त प्रकार और प्रजातियों का चयन, पशुधन चारा उपलब्धता, उपयुक्त वातावरण तैयार करना जो तनाव, बीमारी और परजीवियों को कम करता हो, टीकों और पशु चिकित्सा का बायोल जिक्स शामिल हैं। मांस व प्रजनन के लिए उपयोग होने वाले पशुओं में 12 महीनों में 1 बार एंटीब योटिक्स अथवा एलोपैथी पद्दति से उपचार करने की अनुमति होती है। थनेला रोग के उपचार हेतु 12 महीनो में 2 बार एलोपैथी से उपचार करने की अनुमति होती है। एंटीब योटिक्स का उपयोग केवल शल्य क्रिया, दुर्घटना अथवा उन परिस्थितियों में किया जा सकता है। जब दूसरी दवाईयाँ प्रभावहीन हो। टीकाकरण उन्हीं परिस्थितियों में करना चाहिये जब संक्रामक बीमारियों का खतरा हो अथवा आसपास संक्रामक बीमारियाँ हो। अधिकतर जैविक फार्म पर पशु चिकित्सा के लिए एलोपैथी पद्धति से उपचार करना निषिद्ध होता है।

पशु प्रजनन

जैविक फार्म पर पशुओं में प्रजनन की इस प्रकार हो कि स्थानीय नस्लों को प्राथमिकता मिल सके। पशुओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता को पशु उत्पादन क्षमता से ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिये। पैदा होने वाली संतानों में बीमारियों की उपस्थिति को रेखांकित करना चाहिये। इस प्रकार के जानवरों का चयन करना चाहिये, जिनकी संतानों में कम से कम बीमारियाँ पायी जाती हो।

ऐसी पशु नस्लों का चयन करें जिनमें हिस्टोकोमैपटेबिलिटी, उत्पादन उपयुक्त नहीं है। छोटे खेत आम तौर पर जैविक विकास पशुधन उत्पादन के लिए सीमित होते हैं विशेष रूप से निर्यात के लिए उपयुक्त नहीं होते है। स्वच्छता नियम केवल कुछ विकासशील देश पारंपरिक निर्यात करने में सक्षम हैं इसका कारण सख्त स्वच्छता के कारण पशुधन उत्पाद आयात करने वाले देशों द्वारा लगाई गई बंदिशे है। पशुधन उत्पाद जैविक होने पर कड़ाई से निगरानी की जाती है। रोग नियंत्रण नियम पर कड़ाई से निगरानी की जाती है।

निष्कर्ष

आर्गेनिक या जैविक शुद्धता और श्रेष्ठता का प्रतीक है खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता मान्यता प्राप्त प्रमाणन एजेंसियां द्वारा प्रमाणित की जाती है। भारत में प्रमाणन एजेंसियों को एपीडा द्वारा मान्यता प्राप्त है। प्रमाणन एजेंसियां जैविक कृषि का निरीक्षण और सत्यापन करती है। आज जैविक पशुधन उत्पाद की माँग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। लोग कई गुना मूल्य भी जैविक पशुधन उत्पाद जैसे की दूध, अंडा, मांस इत्यादि के लिए चुकाने के लिए तैयार है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों के हमारे किसान भाई जैविक पशुधन सह कृषि का उत्पादन करके ज्यादा से ज्यादा आमदनी प्राप्त कर सकते है। आज समय आ गया है की हम आधुनिक पद्धति को अपनाते हुए पुरानी परम्परागत पद्धति को जीवन शैली में जगह दे। जैविक पशुधन उत्पादन एक प्रकार का खाद्य तंत्र है। जिसमें पशुओं के कल्याण, पर्यावरण सुरक्षा, न्यूनतम मात्रा में औषधियों का प्रयोग और हानिकारक तत्वों के बिना उत्पादन होता है। जैविक तंत्र इस प्रकार से विकसित किया जाता है कि जिसमें- पशुओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि, पशुओं के सुख और आराम में वृद्धि, दूध और मांस में अवशिष्ठ तत्व में कमी और पशुओं और पर्यावरण को कम हानि हो। जैविक पशुधन प्रबंधन में पशु उपचार के बजाए बचाव पर जोर देते है। ताकि, पशु तनाव से मुक्त रहे। पशु अपना नैसर्गिक व्यवहार प्रकट करें और उच्च गुणवत्ता युक्त चारा खा सके। जैविक पशुधन प्रबंधन में पशुओं का भोजन इस प्रकार का होता है जो पशु के पोषण की जरूरतों को पूरा कर सके। जिससे, पशुओं के रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो सके।

संरक्षित तकनीक द्वारा जैविक सब्जियों का उत्पादन

डा. डी.एस. यादव, प्रभारी अधिकारी,
सेन्टर ऑफ एक्सीलेन्स फॉर वेजिटेबिल उमर्दा, कन्नौज।
Email:drdsyadav51@gmail.com

सारांश

भारत विश्व में सब्जियों के उत्दपादन में चीन के बाद दूसरे स्तर पर है। जो विश्व की कुल सब्जी उत्पादन का 14 प्रतिशत है। भारत 17.23 टन प्रति हेक्टेयर उत्पादकता की दर के साथ 176.18 मिलियन टन सब्जी का उत्पादन करता है। भारत में सब्जियों के कम उत्पादन का प्रमुख कारण खुले वातावरण में प्राकृतिक कारणों वर्षा, धूप, कम तापक्रम, ओला आदि के कारण उत्पादन अवस्था पर नुकसान होना है। सब्जियों की उत्पादकता बढ़ाने एवं प्राकृतिक कारणों से बचाव हेतु संरक्षित खेती के उत्पादन को बढ़ाना आवश्यक है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय बागवानी मिशन योजना के अन्तर्गत संरक्षित खेती को बढ़ावा देने हेतु 50 प्रतिशत अनुदान पॉलीहाउस, नेट हाउस, वाक इन टनल, लो टनल पर उपलब्ध कराई जा रही है। पॉलीहाउस में उत्पादन 2-3 गुना सामान्य परिस्थितियों में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। पॉलीहाउस में रोग-कीट की समस्या भी कम रहती है। इसमे जैविक खेती की ज्यादा संभावनाये है।

भारत में विभिन्न प्रकार की सब्जियों का वर्ष भर विभिन्न कृषि जलवायु की उपलब्धता के कारण उत्पादन सम्भव हो रहा है। तकनीक के विकास के साथ इसे देश के किसी भाग एवं किसी समय पर उत्पादन करना सम्भव हो रहा है। इसके लिए संरक्षित संरचना का उपयोग कर सब्जियों का उत्पादन साल भर पॉलीहाउस/हरितगृह में करते हैं। पॉलीहाउस/हरितगृह में उत्पादन गुणवत्तायुक्त एवं 2-4 गुना अधिक होता है। भारत में इस तकनीक का तेजी से विस्तार हो रहा है। बेमौसमी सब्जियों के उत्पादन, रंगीन शिमला मिर्च एवं खीरा उत्पादन में इस तकनीक का विशेष योगदान रहा है। भारत सरकार द्वारा संचालित राष्ट्रीय औद्योगिक मिशन योजना द्वारा 50 प्रतिशत अनुदान उपलब्ध कराने के कारण कृषकों का लगाव इस तकनीक की तरफ बढ़ा है। कृषकों को सब्जियों का उचित मूल्य मिल सके इसके लिए पॉलीहाउस में सब्जियों का उत्पादन करना नवीन एवं सुगम तकनीक है इसमें मौसम की विषम परिस्थितियों के उपरांत सामान्य की तुलना में प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं। सामान्य रूप से खुले वातावरण में अधिकतम तकनीकों का उपयोग कर 70-80 टन टमाटर का उत्पादन कर सकते है। वहीं पॉलीहाउस में 200 टन तक उत्पादन सम्भव है। इस तकनीक से विश्वभर में सब्जियों का उत्पादन बढ़ा है। जिससे टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा, चेरी टमाटर का अधिकतम 300 टन उत्पादन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ है। कृषकों को संरक्षित खेती में जैविक उत्पाद पर जोर देने की जरूरत है।

भूमि का चुनावः पॉलीहाउस की स्थापना से पूर्व विभिन्न सावधानियों पर ध्यान देना चाहिए। जिससे बाद में किसी प्रकार की परेशानी न हो। चयनित स्थान समतल, आवागमन हेतु सुविधाएँ, सिंचाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो नलकूप का पानी सिंचाई हेतु उपयोग करें। नहर, तालाब के पानी में ऐलग्री एवं संक्रमित पानी रहता है। स्थानीय स्तर पर कुशल मजदूरों की उपलब्धता हो। जिसमें सब्जियों की उत्पादन के समय रोपण, सिंचाई, पोषक तत्वों के प्रबंधन एवं सिंचाई में सही तकनीकों का प्रयोग किया जा सके।

संरक्षित संरचनाओं के प्रकार

लो टनलः संरक्षित खेती की यह सबसे छोटी संरचना है। इसमें 90 सेमी. चौड़ी एवं 1 मीटर ऊँचाई की लूप की संरचना 100 फीट लम्बाई की उपयुक्त रहती है। खेत में लो टनल तैयार कर इसमें फसलों का रोपण करते हैं। इससे बाहरी वातावरण से धूप, वर्षा, पाला, ठंडी हवाओं से फसल को विपरीत परिस्थितियों के समय फसल को संरक्षित रखते हैं। इसमें 25-30 दिन पूर्व टनल में पौध का रोपण खुले वातावरण के पहले कर देते हैं। यह सामान्य रूप से यू.वी. स्टेब्लाइज्ड एलडीपीई पॉलीथेन होती है।

वाक इन टनलः यह टनलनुमा संरचना की जी.आई. पाइप द्वारा बनाया जाता है। इसके ऊपर 200 माइक्रोन की यू.वी. स्टेब्लाइज्ड पॉलीथेन द्वारा कवर यिका जाता है। साइड में नेट का प्रयोग कर पॉलीथेन के द्वारा ढक दिया जाता है। जिससे कीट नियंत्रण के साथ-साथ वेन्टीलेशन भी अच्छा रहता है। यह 20 फीट चौड़ी एवं 100 फीट लम्बाई युक्त वाक इन टनल छोटे कृषकों के लिए उपयोगी रहती है।

नेट हाउसः नेट हाउस में 40 प्रतिशत का सफेद नेट का प्रयोग किया जाता है। जिसमें टमाटर की फसल, खीरा, बैंगन का उत्पादन अच्छा किया जा सकता है। जहाँ तापक्रम में बहुत ज्यादा साल भर अन्तर नहीं रहता है। नेट हाउस का उद्देश्य कीट नियंत्रण के साथ-साथ अन्दर का वातावरण पौधे के लिए अनुकूल रखना होता है। इसका उपयोग सब्जियों के साथ-साथ फलों में आम, अमरूद, केला में किया जाने लगा है। इसका आकार आवश्यकतानुसार रख सकते हैं।

सेड नेट हाउसः इसका प्रयोग उन क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। जहाँ अधिक गर्मी, तेज हवायें एवं कीटों की समस्या रहती है। इसका प्रयोग बेमौसम में सब्जियों को उगाने हेतु किया जाता है।

ग्रीन हाउसः यह पॉलीहाउस की तरह निर्मित रहता है। जिसको पारदर्शी मेटीरिपर के द्वारा कवर कर अन्दर का वातावरण पौध उत्पादन हेतु अर्द्ध या पूर्ण रूप से स्वचालित तकनीक पर आधारित रहता है। इस तकनीक में अब काँच की जगह पॉलीथीन का प्रयोग किया जाता है। यह पॉलीथीन पूर्ण रूप से यू.वी. स्टेबिलाइज्ड 200 माइक्रोन मोटी रहती है। इसका आकार 500 वर्गमीटर से 4000 वर्गमीटर का उपयुक्त रहता है।

पौध उत्पादन तकनीक

पॉलीहाउस में सब्जियों की खेती हेतु प्रो ट्रे में पौध उत्पादन तकनीक का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिये टमाटर, बैंगन, मिर्च हेतु 8-10 घन सेमी. तथा खीरा, तरबूज, खरबूजा हेतु 18-20 घन सेमी. आयतन वाले प्रो ट्रे में मीडिया में कोकोपीट, वर्मीकुलाइट व परलाइट 3:1:1 के अनुपात में मात्रा की दर से मिलायें। कोकोपीट को रात भर पानी में भिगोंकर सुबह पानी को अलग कर कोकोपीट को पुनः साफ पानी से साफ कर अतिरिक्त पानी को निकालकर तीनों घटक को मिलाकर आपस में मिलाकर प्रो ट्रे में भर दें। बीज बुवाई मशीन द्वारा या प्रो ट्रे में समान गहराई पर छेदकर एक-एक बीज की बुवाई कर पुनः मीडिया से ढक कर प्रो ट्रे को 28 डिग्री सेन्टीग्रेट पर 48 घंटे तक रखें जब बीजों का अंकुरण हो जाये उसके बाद हाईटैक पौधशाला में स्टैण्ड पर रखें। सिंचाई बूमर विधि द्वारा करें। सप्ताह में 2 बार 19:19:19 एन.पी.के. खादों का प्रयोग 1 ग्राम/लीटर पानी में एवं सप्ताह में एक बार कैल्शियम नाइट्रेट एवं एक बार मैग्नीशियम नाइट्रेट का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में प्रयोग करें। 15 दिन की पौध होने पर सूक्ष्म तत्व मिश्रण 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से स्प्रे करें। इसे पुनः 15 दिन बाद प्रयोग करें। इस प्रकार 30-35 दिन में उच्च गुणवत्ता वाली पौध तैयार हो जाती है। खीरा की पौध 25-28 दिन में तैयार हो जाती है।

खेत की तैयारीः संरक्षित संरचना में सबसे पहले मिट्टी की खुदाई उपरांत ढेलों को तोड़कर जमीन को समतल एवं मुलायम बनाया जाता है। 100 सेमी. चौड़ाई एवं 15 सेमी. ऊँची क्यारियों को बनाकर क्यारियों के बीच में 50 सेमी. जगह छोड़ दी जाती है। क्यारियों में 20 किग्रा. कम्पोस्ट प्रति वर्ग मीटर में डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिलाया जाता है। इसके बाद सोलराइजेशन द्वारा मिट्टी को विकिरीकरण किया जाता है। इसमें 30 माइक्रोन की पॉलीथेन से क्यारियों को 15 दिन हेतु ढक दिया जाता है। एक दिन के अन्तराल पर 30 मिनट टपक सिंचाई द्वारा पानी की आपूर्ति की जाती है। ऐसा 5-6 दिन तक करने से जमीन के अन्दर कीट, जीवाणु, सूत्रकृमि एवं खरपतवार के बीज नष्ट हो जाते है। इस तकनीक द्वारा मई-जून में तापक्रम 65-70 डिग्री. सेन्टीग्रेट तक पहुँच जाता है। जिससे जमीन के अन्दर सभी प्रकार के रोग-कीट नष्ट हो जाते हैं।

मल्चिंगः पॉलीहाउस या अन्य विधि द्वारा उगाई जाने वाली सब्जियों में मल्चिंग बहुत उपयोगी है। इसमे 25 से 30 माइक्रोन की सिल्वर/काले रंग की पॉलीथेन का प्रयोग किया जाता है। इससे जमीन में नमी संरक्षण के साथ-साथ पौधों के जड़ क्षेत्र में उपयुक्त वातावरण रखने में मदद मिलती है। जिससे पौधों का विकास अच्छा होता है। इससे खरपतवार उगने की सम्भावना नहीं रहती है। प्लास्टिक मल्चिंग पर छिद्र की दूरी लगाई जाने वाली सब्जी के ऊपर निर्भर रहती है। छिद्र का आकार 8-12 सेमी व्यास का होना चाहिए।

पौध रोपणः पूर्ण तैयारी करने के बाद प्रो ट्रे में तैयार पौध को रोपण करना चाहिए। इसके लिए मल्चिंग को निश्चित दूरी पर गोला काटकर वहाँ पर पौध को रोपण करना चाहिए। इसके लिए उस जगह से 3-4 इंच गहराई की मिट्टी को निकालकर पौध को रखकर पुनः मिट्टी को उसी खाली जगह पर भर दें। ध्यान रहे कि मिट्टी को ज्यादा न दबायें। पौध रोपण के तत्काल बाद 30 मिनट के लिए ड्रिप इरीगेशन द्वारा सिंचाई करनी चाहिए।

सिंचाईः सब्जियों के उत्पादन में सिंचाई हेतु ड्रिप सिंचाई का प्रयोग करें। सिंचाई को पौधे की अवस्था एवं मौसम के अनुसार निश्चित करना चाहिए। अधिक नमी होने के कारण सब्जियों में विशेष कर खीरा में डाउनीमिल्डयू रोग का प्रकोप हो जाता है। सामान्तयः 1.5-2 लीटर प्रति घण्टा क्षमता के ड्रिपर का प्रयोग पॉली हाउस में उगाने वाली सब्जियों हेतु किया जाता है। सिंचाई के साथ-साथ वेंचुरी विधि द्वारा पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति भी की जाती है।

पोषक तत्व प्रबन्धनः सब्जियों का उत्पादन एक निश्चित क्षेत्रफला में अन्य फसलों की तुलना में अधिक होता है। जिसके कारण पोषक तत्वों की आपूर्ति समय से एवं उपयुक्त मात्रा में करनी चाहिए। संरक्षित सब्जियों के उत्पादन में निम्नलिखित उर्वरक की आपूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए।

फसल की अवस्था	एन.पी.के.	मात्रा/4000 वर्गमीटर
रोपण से पहले फूल बनने तक	19:19:19	2000 ग्राम
फूल खिलने से फल बनने तक	19:19:19 46:00:00 00:00:50	850 ग्राम 1400 ग्राम 2200 ग्राम
फल बनने से सभी तुड़ाई तक	19:19:19 46:00:00 00:00:00	850 ग्राम 2000 ग्राम 2000 ग्राम

संरक्षित गृह में उर्वरक सप्ताह में 2 बार सिंचाई के माध्यम से दें। सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति हेतु मल्टीप्लेक्स 2 ग्रा./लीटर का घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर खड़ी फसलों में पत्तियों पर करना चाहिए। कोशिश हो की जैविक उत्पादों का ही प्रयोग करे।

पौध को सहाराः संरक्षित सब्जियों के उत्पादन में अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु पौधों को ऊपर की तरफ बढ़ने हेतु प्रेरित करने के लिए पौधों को सहारा देने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए पौधों की ऊँचाई जब 20-25 सेमी. हो जाये उस समय ट्रेलिसिंग विधि द्वारा पौधों को बाँधते हैं। इस तकनीक में पौधों को 8 फीट की ऊँचाई पर लगे हुए मुख्य सहारा देने वाले तार पर धागा बाँधकर उस पौधे पर जमीन से 6 इंच की ऊँचाई पर बाँधते है।

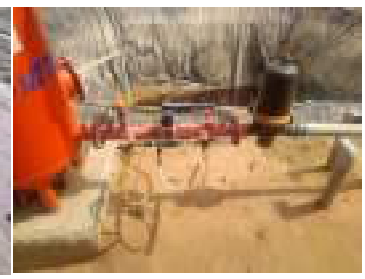

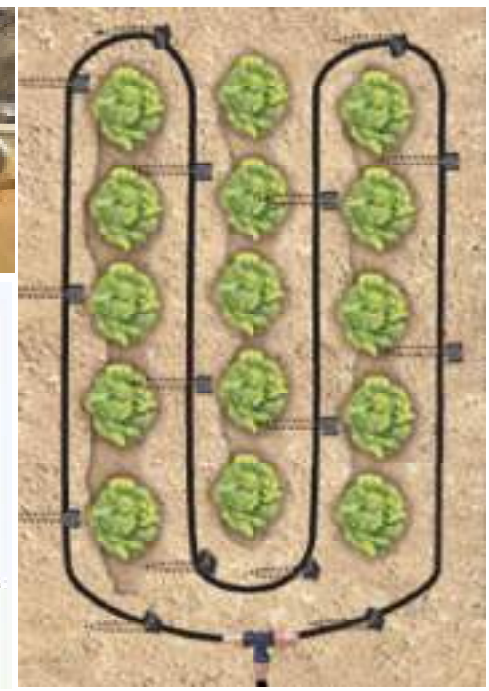

इसके बाद पौधों को धागे के साथ लपेटकर ऊपर की तरफ बढ़ने देते हैं। लपेटने की प्रक्रिया को प्रति 2-3 दिन में पुनः करते रहते हैं। जिससे पौध ऊपर की तरफ रहे। ध्यान रहे कि पौधों को बाँधते समय खीरा, टमाटर में मुख्य तने पर निकली हुई शाखाओं को हटाते रहें। जिससे पौधों को उचित धूप मिलती रहे। कृति कर्षण क्रियायें प्रभावशाली ढंग से की जा सके। जमीन से 30 सेमी. की ऊँचाई तक सभी पत्तियों को हटा दें।

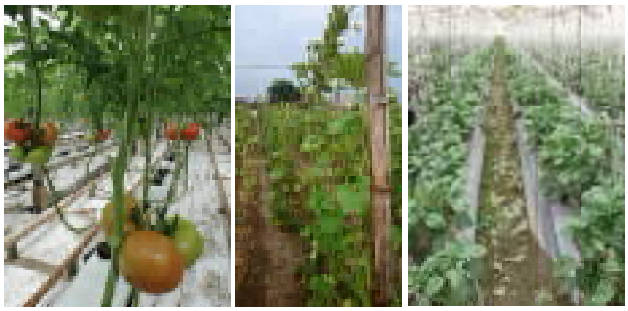

परागणः संरक्षित गृहों में उगाई जाने वाली सब्जियों जैसे- टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा आदि में परागण की समस्या रहती है। खीरा में पारथीनोकारपिक प्रजातियों के उगाने से यह समस्या नहीं रहती है। टमाटर में परागण हेतु बम्बल मधुमक्खी, हार्मोन, एयर गन, कम्पन मशीन, हाथ द्वारा ट्रेलिसिंग को हिलाकर परागण की समस्या को हल किया जा सकता है। पॉलीहाउस में बायप्रेटर परागकर्ता द्वारा पॉलीहाउस में उपयोग करने पर परागण की 89 प्रतिशत समस्याएँ पूर्ण हो जाती है।

कीट नियंत्रणः सामान्य रूप से संरक्षित गृह/हरित गृह में कीटों की समस्या कम रहती है। लेकिन कभी-कभी एफिड, मकड़ी, सफेद मक्खी, फल छेदक कीटों द्वारा फसल को नुकसान पहुँचाया जाता है। इसके लिए नीम तेल 1500 पी.पी.एम. 5 मिली/लीटर पानी में घोलकर 12-15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने पर कीटों की समस्या नही रहती है। नमी का प्रतिशत पॉलीहाउस/हरित गृह में 80 प्रतिशत से अधिक न होने दें।

रोग नियंत्रणः संरक्षित गृह/हरित गृह में जमीन में लगने वाले रोगों मे पिथियम, राइजोक्टोनिया, फ्यूजेरिम आदि रोगों का प्रकोप होता है। जिसमें पौधे किसी भी अवस्था में सूख जाता है भूमि जनित रोगों के नियंत्रण हेतु पॉलीगृह के 12-15 दिन के अन्तराल में कार्बन्डाजिम फफूँदनाशक दवा 2 प्रतिशत का घोल बनाकर पौधों की जड़ों पर ड्रिंच करना चाहिए। पत्तियों में झुलसा, डाउनीमिल्डयू लगने पर कार्बन्डाजिम + मैंकोजेब (12+63 प्रतिशत) की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर की दर से घोलकर स्प्रे करने से रोग नियंत्रण में रहता है। परंतु जैविक खेती में नीम, करंज व अन्य जैविक कीट नाशक का उपयोग करे।

उत्पादनः संरक्षित गृहों में सब्जियों में टमाटर, बैंगन, शिमला मिर्च, खीरा का उत्पादन खुले वातावरण की अपेक्षा 3-4 गुना अधिक उत्पादन होता है। टमाटर का उत्पादन 200 टन, शिमला मिर्च 25 टन, खीरा 25-30 टन उत्पादन प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जाता है। रोग-कीट के द्वारा नुकसान न होने के कारण फसल की गुणवत्ता अधिक अच्छी होने के कारण बाजार में मूल्य अधिक प्राप्त होता है।

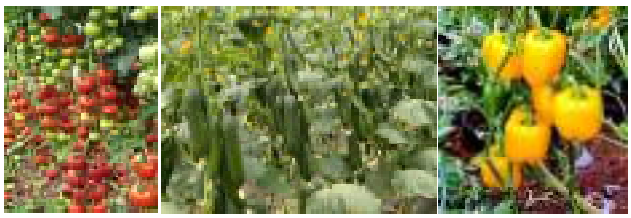

खेती के नये आयाम ऊसर भूमि में करें फलों की जैविक खेती

डॉ. किशन जीनगर, प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, भीलवाडा

स्वाति ईनाणी, अतिथि संकाय कृषि महाविद्यालय, भीलवाडा

सारांश

वर्तमान समय में देश में उपलब्ध अधिकांशतः कृषि योग्य भूमि को उपयोग में लाया जा रहा है, किन्तु आज भी देश के विभिन्न भागों में काफी क्षेत्रफल में भूमि बंजर पड़ी है जिससे कोई उपज नहीं मिल पा रही है। इन बंजर पड़ी जमीनों में अम्लीय मृदा, उसरीली मृदा, रेगिस्तानी एवं दियारा आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें ऊसर भूमि का प्रमुख स्थान है, क्योंकि देश की 70 लाख हेक्टेयर भूमि ऊसर भूमि से प्रभावित है, जिसमें उत्तर प्रदेश में औसतन 13 लाख हेक्टेयर ऊसर भूमि है जो देश के किसी भी राज्य में सर्वाधिक है। इन ऊसर क्षेत्रों में से कुछ में खरीफ में धान तथा कुछ क्षेत्रों में खरीफ एवं रबी में क्रमशः धान-गेहूँ की खेती किसान निजी संसाधनों का उपयोग करके करते है परंतु उत्पादन का स्तर अत्यन्त ही कम होता है।

ऊसर भूमि की मृदा में क्लोराइड़, सोडियम, कैल्सियम तथा मैग्नीशियम एवं इनके कार्बोनेट तथा बाई कार्बोनेट की सान्द्रता अधिक होती है, जिससे भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाएं बिगड़ जाती हैं। ऊसरपन के लिए जल निकास व जल भराव की सही व्यवस्था का न होना, भूमिगत जल का ऊँचा होना, गहरी क्षेत्र में जल रिसाव का होना, भू-क्षरण एवं रासायनिक उर्वरकों का असन्तुलित उपयोग, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई मुख्य रूप से जिम्मेदार है। हरितक्रान्ति के शुभारम्भ के साथ ही रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी एवं खरपतवारनाशी के अधिक मात्रा में प्रयोग से पर्यावरण एवं भू-जल प्रदूषण में भारी मात्रा में वृद्धि हुई है। खासतौर से औद्योगिक फसलों (फल, सब्जी एवं फूल) पर रसायनों का प्रयोग अधिक एवं असंतुलित मात्रा में हो रहा है, जिससे प्रदूषण के साथ-साथ उत्पादन लागत अधिक एवं मनुष्य तथा जानवरों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अतः भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने के लिए, वायुमण्डलीय प्रदूषण को सही करने में एवं लागत की कमी को दूर करने हेतु जैविक, बायोडायनामिक उर्वरकों का उपयोग आवश्यक हो गया है। इस प्रकार रसायनों एवं उर्वरकों के प्रयोग को कम करते हुये कार्बनिक पदार्थों का भरपूर उपयोग करते हुए उत्पादकता को दीर्घकालीन व स्थिर बनाये रखा जा सकता है ओर यह संभव है जैविक खेती पद्धति से। जैविक खेती पद्धति के उपयोग से ऊसर भूमि में धीरे-धीरे उपजाऊ भूमि बनाया जा सकता है।

जैविक खादों का महत्व

1. जैविक खादों के प्रयोग से उद्यानिकी भूमि में जीवाश्म की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों की मात्रा में कमी लाई जा सकती है।
2. जैविक खादों में उपलब्ध सूक्ष्म जीव वायुमण्डल एवं भूमि में मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधों को आसानी से उपलब्ध कराने में सहायक होते हैं।
3. सूक्ष्म जीव नत्रजन स्थिरीकरण एवं फॉस्फोरस उपलब्धता के अतिरिक्त विभिन्न हार्मोन्स, सूक्ष्म तत्व एवं विटामिनों को पौधों को उपलब्ध कराते हैं।
4. जैविक खादों में उपलब्ध सूक्ष्म जीव मृदा जनित बीमारियों को फैलाने वाले सूक्ष्म जीवों को आंशिक/पूर्णरूप से नष्ट कर देते हैं।
5. जैविक विधि से विभिन्न प्रकार के कम्पोस्ट बनाकर मृदा में जीवाश्म की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ बाग के अवशेष, फल एवं सब्जी मण्डियों के कचरों का सदुपयोग किया जा सकता है।
6. जैविक विधि से फलोत्पादन करने से मृदा उर्वरता में वृद्धि के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
7. इस विधि से खेती में सुगमता एवं सस्ते उपलब्ध संसाधनों का समन्वित प्रयोग किया जा सकता है।
8. जैविक खेती से भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में वृद्धि के अतिरिक्त गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
9. इस पद्धति से खेती करने पर भूमि की जल धारण क्षमता एवं वायु संचार में वृद्धि के साथ-साथ मृदा में सूक्ष्म जीव, केंचुआ एवं लाभदायक कीटों आदि की संख्या में वृद्धि होती है।
10. उद्यान में लगातार कुछ वर्षों तक विभिन्न जैविक खादों एवं उर्वरकों का प्रयोग करते रहने से ऊसर मृदा में धीरे-धीरे सुधार होकर भूमि उपजाऊ हो जाती है।

ऊसर मृदा के लिये उपयुक्त प्रमुख फल प्रजातियाँ

कुछ फल प्रजातियाँ ऊसर के प्रति सहनशील होती हैं, जो इस प्रकार की मृदा में आसानी से उगाई जा सकती हैं। इस प्रकार के फल एवं उनकी उपयुक्त प्रजातियाँ निम्नलिखित हैं :

फलों के नाम	उपयुक्त किस्में
1. आंवलाः	चकैया, बनारसी, नरेन्द्र आंवला-6 एवं नरेन्द्र आंवला-7
2. बेरः	गोला, सेव एवं उमरान
3. अमरूदः	लखनऊ-49 (सरदार) एवं इलाहाबादी सफेदा
4. करौंदाः	स्थानीय चयनित किस्में
5. बेलः	नरेन्द्र बेल-5 एवं नरेन्द्र बेल-9
6. अनारः	भगवा, कन्धारी, जोधपुर रेड एवं जालोर बेदाना
7. खिरनीः	चिरौंजी, जामुन

उद्यान में प्रमुख जैविक/बायोडायनामिक खाद का उपयोग

1. **हरी खादः** भूमि में पर्याप्त मात्रा में जीवा म तथा उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिये हरी खाद का विशेष योगदान है। इसके लिये ऊसर मृदा में ढैंचा या सनई को उगाकर फूल आने के पूर्व खेत में काटकर, पलटकर सड़ाया जाता है।
2. **हरी पत्तियों की खादः** हरी पत्तियों तथा हरे मुलायम तनों को नियमित रूप से एकत्रित करके खाद के रूप में उपयोग किया जाता है। विशेषकर ऊसर भूमि में सुबबूल, ग्लिरीसिडिया, ढैंचा आदि को काटकर फैला दिया जाता है, जिससे नत्रजन के अलावा पोटाश भी प्रचुर मात्रा में मिल जाता है।
3. **कम्पोस्टः** कम्पोस्टिंग एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें कार्बनिक पदार्थों का विघटन सूक्ष्म जीवों द्वारा होता है, जिसमें विभिन्न पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जैसे-गोबर, ताजी हरी घास, सूखी घास, पत्तियाँ, केले के पत्ते, नारियल के अवशेष, फल एवं सब्जी मण्डियों के अवशेष आदि। निर्माण में प्रयुक्त साधन एवं विधियों के आधार पर विभिन्न प्रकार के कम्पोस्ट होते हैं। उदाहरणार्थ- बायोडायनामिक कम्पोस्ट, नैडेप कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट (केंचुऐं की खाद) इनका उपयोग उम्र के अनुसार औसतन 10 से 20 किलोग्राम पौधों के थालों में अच्छी तरह मिलाकर करना चाहिये।
4. **वर्मीवॉशः** वर्मीवॉश (तरल) ड्रम/मिट्टी के बड़े बर्तन में रखे केचुओं की अधिक संख्या से बनाया जाता है। इसमें मुख्य एवं सूक्ष्म तत्वों के अलावा हार्मोन्स एवं विटामिन्स पाये जाते हैं, जिसके एक भाग में 5 भाग पानी (1 : 5) मिलाकर प्रयोग करना चाहिये।
5. **बायोडायनामिक उपक्रम (बी.डी. 502-508):** यह उपक्रम विभिन्न औषधीय पौधों के भागों को जानवरों के विशिष्ट अंगों में एक निश्चित अवधि तक रखकर बनाये जाते हैं। पौधों की आयु के अनुसार 20-25 ग्राम प्रति पेड़ प्रयोग करें या घोल बनाकर छिड़काव किया जा सकता है, जो फलों की उत्पादकता एवं पौष्टिकता बढ़ाने में प्रभावी पाये गये हैं।
6. **जैविक उर्वरकः** ऊसर मृदा में चूंकि फॉस्फोरस की अनुपलब्धता होती है, इसलिये (पी.एस.बी.) फॉस्फोरस घुलनशील बैक्टीरिया और एजोटोबेक्टर का प्रयोग जैविक खाद के साथ करना चाहिये। इसकी मात्रा औसतन 25 ग्राम 1 वर्ष के पौधे को देते हुये उम्र के साथ बढ़ाते हुये 10 वर्ष के औसत पेड़ को 250 ग्राम प्रति वर्ष प्रयोग करने से उत्पादकता बरकरार रहती है।

उपयुक्त के अतिरिक्त काऊ पैट पिट (100 ग्राम/पेड़), गाय के सींग की खाद, अग्निहोत्र, पंचगव्य आदि पर भी विभिन्न प्रयोगों से अच्छे परिणाम मिले हैं।

ऊसर मृदा में सफल फलोत्पादन के लिये जैविक पदार्थों के साथ-साथ नमी प्रबन्धन पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके लिये निम्न क्रियायें आवश्यक होती हैं।

अ. अन्तराशस्य फसलें

फल वृक्षों के बीच की खाली जमीन में लघु अवधि की विशेषतर दलहनी फसलों को उगाना अन्तराशस्यन कहलाता है। नये रोपित बागों में अन्तराशस्य फसलें उगाने से पर्याप्त मात्रा में जीवाश्म पदार्थों की प्राप्ति के साथ-साथ पर्याप्त नमी भी संरक्षित रहती है और कुछ आय भी प्राप्त हो जाती है।

ब. आवरण फसलें

ऊसर भूमि में नमी की सुरक्षा एवं भू-क्षरण को रोकने के लिये आवश्यकतानुसार दलहनी फसलें जैसे-उर्द, मूंग, लोबिया आदि की खेती करके मृदा उर्वरता एवं जलधारण क्षमता में वृद्धि की जा सकती है।

स. पलवार

पलवार का तात्पर्य भूमि या थाले को जैविक अवशेष जैसे-खरपतवार, पुआल, गन्ने की पत्ती, भूसा, बुरादा एवं विभिन्न पौधों की सूखी पत्तियाँ आदि से निश्चित अवधि तक ढकने से है। इस प्रक्रिया से कार्बनिक पदार्थों की प्राप्ति, जल धारण क्षमता में वृद्धि एवं खरपतवार का नियंत्रण आसानी से हो जाता है।

ऊसर मृदा में फसलोत्पादन में अन्य आवश्यक सावधानियाँ

1. पौध रोपण के बाद हल्की सिंचाई करते रहना चाहिये एवं यदि पौधे सूख जाते हैं तो समय उस जगह पर पुनः नये पौधे लगाने चाहिये।
2. ऊसर के प्रति सहनशील फल एवं प्रजाति का चयन करना चाहिये।
3. अगर मृदा में नीचे लगभग 1 मीटर की गहराई के आसपास कंकड या पत्थर की पर्त पायी जाती है। पौध रोपण के पहले ही इसे विधिवत तोड़कर मिट्टी तैयार कर लेना चाहिये।

4. बाग की सुरक्षा के लिये चारो तरफ जैविक बाड़ (बायो फैसिंग) लगाना चाहिये, इसके लिये चारों तरफ 1 मीटर गहरी एवं चौड़ी खाईं खोदकर बाग के अन्दर के तरफ मेड़ बनाकर इसमें झाड़ी जैसे विलायती बबूल, करौंदा आदि की बुवाई करनी चाहिये।

5. ऊसर मृदा में फल प्रजाति के बीच में कम दूरी चाहने वाले फल प्रजाति को फिलर क्राप के रूप में लगाना चाहिये, जिससे बाग में जमीन खाली न रहे और कुछ उत्पादन के अतिरिक्त कार्बनिक पदार्थ भी मृदा में मिलता रहे।

6. कीटों एवं बीमारियों से सुरक्षा के लिये विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधों जैसे अरण्डी, मदार, नीम, लैन्टाना, सदाबहार एवं दलहनी पौधों की पत्तियों को पानी, गाय के मूत्र, गोबर एवं बायोडायनामिक उत्प्रेरको के साथ शोधित करके उपयोग करना चाहिये एवं आवश्यकता अनुसार पानी मिलाकर तरल खाद या जैव कीटनाशी के रूप में छिड़काव करने से पर्याप्त सुरक्षा एवं उत्पादन होता है।

जैविक खेती से न केवल उत्पादन को बढाया जा सकता है बल्कि हमारी धरा को उपजाऊ भी बनाया जा सकता है। जैविक खेती आज के समय की माँग ही नहीं है वरन बढती आबादी की वजह से हो रहे भूमि दोहन को रोकने में भी कारगर है अतः भूमि की उपजाऊ क्षमता और गुणवता को बढाने, सिंचाई के संसाधनों के समुचित उपयोग में, रासायनिक खाद पर निर्भरता कम करने के लिए एवं फसलों की उत्पादकता में वृद्धि के लिए जैविक खेती सशक्त कदम है।

इससे न केवल उत्पादन की लागत कम होती है वरन कृषक भाईयों को आय भी अधिक प्राप्त होती है तथा अंतराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में भी जैविक कृषि खरी उतरती है। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए यह नितांत आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हो, शुद्ध वातावरण में रहे व पौष्टिक आहार मिले तो इसके लिए हमें जैविक कृषि को अपनाना ही होगा जो कि हमारी नैसर्गिक जरुरतों को पूरा करे व हमें सम्पन्न व खुशहाल जीवन की तरफ अग्रसर करें।

प्राकृतिक खेती में सरसों की खली के उपयोग

पूर्णिमा सोगरवाल, अनुभूति शर्मा एंव पी.के.राय

भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

सारांश

सरसों के तेल का उपयोग पूरे विश्व में होता है जिसमें यह मसालें, अचार एवं खाना बनाने इत्यादि के काम आता है। तेल निकालने के बाद बची खली पशुओं को खिलाई जाती है, जिससे पशु को पौष्टिक तत्व मिलते हैं जो उनकी हर तरह की शारीरिक क्षमता को बढ़ाती है। खली का उपयोग प्रोटीन युक्त (३५-४० प्रतिशत) आहार के रूप में पशुओं एवं पक्षियों के लिए किया जाता है। इस खली को खाद के रूप में भी खेतों में प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसमें ४-५ प्रतिशत नाइट्रोजन होती है जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। इसका उपयोग घर के बगीचे एवं प्राकृतिक खेती में भी कर सकते हैं।

सरसों का उपयोग पूरे भारत वर्ष मे किया जाता है और सरसों का नाम सुनते ही सबसे पहले हमारे जहन में सरसों का साग आता है। सरसों की पत्तियों को साग सब्जी बनाने में काम लिया जाता है जो अति पौष्टिक होती है। सरसों के बीज का तेल खाना बनाने, शरीर पर मॉलिश करने, साबुन, उच्च कोटि का ग्रीस तथा अचार एवं मसालों को बनाने के काम आता है। सरसों के तेल के साथ साथ सरसों के बीज का उपयोग करने से सब्जी में एक अद्भुत स्वाद मिलता है। इसका तेल सभी चर्म रोगों से रक्षा करता है। सरसों के बीज सेहत के लिए कई प्रकार से फायदेमंद हो सकते हैं क्योंकि इसमें कैरोटीनॉइड, फिनोलिक यौगिक और ग्लूकोसिनोलेट्स जैसे कई प्रकार के फाइटोकेमिकल्स पाए जाते हैं। सरसों के बीज में सेलेनियम और मैग्नीशियम ज्यादा मात्रा मे पाया जाता है जो एंटी-इनफ्लामेटरी होता है। सरसों के तेल को रोज खाने से अस्थमा एवं सर्दी में होने वाली दिक्कतों में लाभ मिलता है सरसों के बीज में 30-46 प्रतिशत तेल पाया जाता है। इस तेल में 42-60 प्रतिशत इरुसिक एसिड तथा 10-12 प्रतिशत ओलिक एसिड, 6-8 प्रतिशत ओमेगा-3, अल्फा-लिनोलेनिक एसिड और 10-15 प्रतिशत ओमेगा-6, लिनोलेनिक एसिड होता है।

आज के समय में वैज्ञानिकों द्वारा नए-नए प्रयोग कर कई तरह की रसायन खाद तैयार की गयी है जिससे फसल की ऊपज में बढ़ोतरी हुई है लेकिन प्राप्त होने वाली फसल रसायन युक्त हो गयी है इसी कारण मानवीय स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है इसलिए हम आपको सरसों की खली के पौधों पर होने वाले फायदों और पौधों पर उपयोग के सभी तरीकों को बताते हैं जिससे आप भी इसका उपयोग अपने घर के बगीचे एंव प्राकृतिक खेती में कर सकते हैं। अपने बगीचे के पौधों को रसायन युक्त खाद के इस्तेमाल से बचा सकते है और पौधों को भरपूर मात्रा में पोषक तत्व दे सकते है तो इसके लिए सरसों खली का उपयोग करना ही सर्वोत्तम उपाय होगा। फल, फूल और सब्जियों वाले पौधों के लिए ये वरदान की तरह है इसके अलावा यह एक बहुत ही अच्छा नेचुरल पेस्टिसाइड भी है। सरसों की खली का आज के समय में क्रय विक्रय भी किया जा रहा है जिससे किसानों की आय में वृद्धि हुई है। तो आइए एक नजर इस पर डालते हैं।

सरसों खली क्या है।

सरसों के दानों से तेल निकालने के बाद जो पदार्थ बच जाता है उसे सरसों खली (mustard cake) कहते हैं जिसमें 5-7 प्रतिशत तेल पाया जाता है तथा इसमें प्रोटीन भी उच्च मात्रा में पाई जाती है। यह आटा चक्कियों जहाँ पर तेल भी पिराया जाता है वहाँ से आसानी से प्राप्त की जा सकती है। डेयरी वाले और दूध बेचने वाले इसे गाय भैंस आदि जानवरों को भूसे के साथ मिलाकर खिलाते हैं जिससे पशुओं को पौष्टिक तत्व मिलते हैं जो उनकी शारीरिक क्षमता को बढ़ाते है। इस खली को खाद के रूप में भी खेतों में प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसमें 4-5 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। इसके अलावा इसका पौधों पर भी बहुत ही अच्छा इस्तेमाल किया जा सकता है तथा इसके उपयोग से हम प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दे सकते है।

सरसों खली में कौन से पोषक तत्व होते हैं

सरसों खली प्रोटीन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम का एक बहुत अच्छा स्रोत है इसके अलावा इसमें कई प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्व भी भरपूर मात्र में पाये जाते हैं जो पौधे की अच्छी वृद्धि के लिए बहुत आवश्यक हैं। इसमें पाये जाने वाले सूक्ष्म पोषक तत्व (micronutrient) जैसे कैल्शियम, मैग्निशियम, सल्फर, जिंक, कॉपर, आयरन और मैंगनीज पौधों में फूल और फल बनने की प्रक्रिया को तेज़ी देते हैं फूल एवं फल की संख्या और गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। (तालिका 1) वैज्ञानिक विश्लेषणों के अनुसार इसमें प्रोटीन की मात्रा 35 से 45 प्रतिशत तक होती है।

सरसों खली का बगीचे में उपयोग

सरसों की खली का बगीचे में कई तरह से उपयोग कर सकते हैं परंपरागत रूप से भारत में सरसों की खली का उपयोग पौधों के लिए खाद के रूप किया जाता है विशेषकर फूल सब्जी और अन्य फलों वाले पौधों पर। यह एक धीमी गति वाली उर्वरक है जिसमें सभी सूक्ष्म पोषक तत्व पाए जाते हैं जो पौधों के विकास के लिए

तालिकाः 1

पोषक तत्व	मात्रा
प्रोटीन	40-42 प्रतिशत
कैल्सियम	0.5-1 प्रतिशत
फॉस्फोरस	1-1.4 प्रतिशत
मैग्निशियम	0.5-0.9 प्रतिशत
मैंगनीज	0.04-0.08 प्रतिशत
नाइट्रोजन	3-4 प्रतिशत

आवश्यक होते हैं। सरसों की खली फूलों के लिए बहुत ही अच्छी खाद होती है। मिट्टी में सरसों खली का पाउडर मिलाने से पौधों की जड़ों में फंगस नहीं लगती है और पौधे का स्वास्थ अच्छा बना रहता है। इसके अलावा यह कई कीटों को पौधो के आस पास आने से भी रोकता है।

सरसों खली प्रयोग करने के तरीके

चूर्ण बनाकर मिट्टी पर छिड़काव

सरसों खली को हाथ से या ग्राइन्डर से चूर्ण बनाकर फूलों या सब्जी वाले पौधे की मिट्टी पर एक लेयर फैला दें। इसके अलावा 20-25 ग्राम (चित्रः-1) सरसों खली चूर्ण को मिट्टी में मिलाकर गमलों में एक इंच की परत बिछा दें जिससे यह एक स्लो रिलीज फर्टीलाइजर की तरह काम करता रहेगा। सरसों खली के छोटे टुकड़े करके भी गमलों में डाल दें। चूँकि यह एक स्लोरिलीज फर्टीलाइजर की तरह काम करता है, इसको खेती में भी उपयोग किया जा सकता।

चित्रः-1 सरसों की खली

चूर्णतरल खाद (Liquid Fertilizer) के रूप में

फूल वाले पौधों जैसे गुलदाउदी, गुलाब, डहेलिया आदि के लिए किण्वित सरसों की खाद अमृत की तरह काम करता है लेकिन पहले इसको उपयोग करने का सही तरीका जान लेना आवश्यक है उसके बाद ही उपयोग करना चाहिए।

सबसे पहले 250 ग्राम सरसों की खली (पूरी तरह से भरी 4-5 मुट्ठी) 5 लीटर पानी में भिगोएँ। भिगोने के लिए कोई मटका या मिट्टी का बर्तन मिल जाए तो बहुत अच्छा रहेगा नहीं तो प्लास्टिक की बाल्टी में अच्छी तरह से घोल लें। (चित्रः 2)

चित्रः2 सरसों खली की तैयार चूर्ण तरल खाद

अब इसको कवर करके गर्मी के मौसम है तो 3-4 दिनों के लिए छोड़ें और अगर सर्दियाँ हैं तो 7-8 दिन के लिए छोड़ दीजिये ताकि यह अच्छे से मिल जाए। अगर 1-2 दिन ज्यादा भी हो जाए तो कोई दिक्कत नहीं है। रोज सुबह अगर किसी छड़ी से घोल को हिला-मिला दें तो और अच्छा रहेगा। 4-5 दिनों के बाद एक गाढ़ा घोल तैयार हो जाएगा जिसमें से तेज़ गंध भी आएगी जोकि सल्फर आदि के किण्वन के कारण आती है। इस घोल के 100 मिलीलीटर में 1 लीटर यानि घोल का 10 गुना पानी मिला लें। वैसे अगर आप इस घोल को 10 से 30 दिन तक ऐसे ही रखते है तो यह और भी ताकतवर होता जाएगा। याद रखना होगा कि बिना पानी मिलाए इसका उपयोग पौधों पर न करें नही तो पौधे खराब हो सकते हैं पतले घोल के 100 मिली. को 15 दिनों में 1 बार उपयोग कर सकते हैं।

सरसों की खली के चूर्ण को किसी डब्बे में रख लें और जब भी किसी गमले की नई मिट्टी तैयार करें तो उसमें 1-2 मुट्ठी सरसों खली मिला दें जिससे पौधे में फंगस लगने का डर पूरी तरह से खतम हो जाएगा। ध्यान रखें कि सरसों की खली का प्रयोग घर के अन्दर रखे पौधों पर न करें क्योंकि इसमें सल्फर पाया जाता है जो घर के अन्दर के वातावरण को नुकसान पहुँच सकता है।

निष्कर्षः हम यह कह सकते हैं कि सरसों का केवल तेल ही उपयोगी नहीं होता बल्कि इसकी खली भी मानव जीवन के लिए उपयोगी और फायदेमंद है क्योंकि इसका उपयोग प्राकृतिक खेती के साथ-साथ आजीविका के लिए भी किया जाता है। जिससे किसान आर्थिक रूप से सक्षम बन सकते हैं।

मृदा परीक्षणः कुशल और लाभप्रद फसल उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया

महिपाल चौधरी, कुशाग्रा जोशी, विजय सिंह मीणा, मनोज परिहार, एस. सी. पांडे, आर. पी. यादव, जे. के. बिष्ट एवं लक्ष्मीकांत

भा.कृ.अ.प.-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा-263601, उत्तराखण्ड

सारांश

मृदा परीक्षण आमतौर पर पोषक तत्व की मात्रा को निर्धारित करने के लिए मृदा के नमूने के विश्लेषण को संदर्भित करता है जिसमें मुख्य रूप से मृदा की रासायनिक संरचना का पता लगाना हैं जैसे कि अम्लता या क्षारीयता, लवणता का स्तर। एक मृदा परीक्षण मिट्टी की उर्वरता या मिट्टी की अपेक्षित विकास क्षमता के साथ-साथ मृदा प्रणालियों में पोषक तत्वों की कमी या अत्यधिक प्रजनन क्षमता से होने वाली विषाक्तता और गैर-आवश्यक अल्प मात्रा वाले तत्वों की उपस्थिति से होने वाले अवरोध को निर्धारित कर सकता है। मृदा परीक्षण के उद्देश्य मुख्य रूप से मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा एवं मृदा प्रतिक्रिया निर्धारण करना, किसी देश, राज्य या जिले की उर्वरता की स्थिति का आंकलन करना एवं मृदा उर्वरता मानचित्र तैयार करना। पोषक तत्वों के पर्याप्तता और कमी वाले क्षेत्रों का वर्णन, समय के साथ मिट्टी की उर्वरता में होने वाले बदलाव का निर्धारण, इत्यादि, उर्वरक उपयोग एवं मृदा संशोधन की अनुशंसा करना तथा, किसानों के लिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड तैयार करना है।

1955-56 के दौरान भारत अमेरिका के मध्य मिट्टी की उर्वरता और उर्वरक उपयोग के निर्धारण के लिए हुए समझौते के अर्न्तगत 16 मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं के साथ भारत में मृदा प्रशिक्षण सेवा की शुरूआत हुई थी। तब से इस कार्यक्रम का विस्तार किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप वर्तमान में देश में लगभग 3887 जिला स्तरीय एवं क्षेत्रीय स्तर की मृदा परीक्षण प्रयोगशाला और मोबाइल लैब स्थापित की गई हैं। वर्तमान में उत्तराखंड में कुल 44 मृदा परीक्षण प्रयोगशालायें सक्रिय रूप से कार्य कर रही हैं। मृदा परीक्षण प्रयोगशालायें मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता को दर्शाने वाले भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों की जाँच में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मृदा परीक्षण का मुख्य उद्देश्य मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा एवं मृदा प्रतिक्रिया निर्धारण करना है जिससे प्राकृतिक संसाधनों का कुशल एवं प्रभावी प्रबंधन सुनिश्चित करने मे मदद मिलती है। मृदा में चूने और महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की आवश्यकता को निर्धारित करने का यह सबसे सटीक तरीका है। इसके अतिरिक्त दूषित स्थलों जैसे भारी खनिजों के स्थल की पहचान करने में भी यह उपयोगी है। मृदा परीक्षण द्वारा मिटटी में तुलनात्मक पोषक तत्वों के स्तर को मापा जा सकता है एवं उर्वरकों के लाभदायक एवं संतुलित उपयोग के लिए भी यह आधार तैयार करता है।

कृषि में टिकाऊ उत्पादन प्रणाली के लिए मिट्टी परीक्षण में कृषि निवेशों का कुशल उपयोग एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण कारक है। जो किसान मिट्टी परीक्षण जैसे कार्यक्रम में शामिल होते हैं उन्हें वांछित उपज स्तर को प्राप्त करने के लिए काफी मदद मिलती है। हालांकि, एक ही फसल के वांछित उर्वरक का प्रकार और मात्रा मिट्टी के प्रकार के साथ बदल जाती है। इसी प्रकार एक ही प्रकार की मिट्टी वाले भिन्न-भिन्न खेतों में भी वांछित उर्वरक मात्रा बदलती जाती है।

मृदा परीक्षण के बिना खेतों में उर्वरक डालना ठीक उसी प्रकार है जिस तरह चिकित्सक की सलाह के बिना दवा लेना। मिट्टी परीक्षण के बिना उर्वरक का उपयोग करने पर पौधे को किसी पोषक तत्व की मात्रा आवश्यकता से अधिक प्राप्त हो सकती है या फिर जिस तत्व की आवश्यकता है, वह बहुत कम मात्रा में प्राप्त हो सकती है। जिसके फलस्वरूप पौधों की वृद्धि सीमित हो सकती है। यह न केवल उर्वरकों की उपव्ययता है बल्कि फसलों की पैदावार वास्तव में उर्वरक के गलत प्रकार एवं गलत मात्रा या अनुचित उपयोग के कारण कम हो सकती है।

मृदा परीक्षण क्या है?

मृदा परीक्षण आमतौर पर मिट्टी के नमूने के विश्लेषण को दर्शाता है। मृदा में विद्यमान पोषक तत्व, उसकी संरचना, तथा अम्लता या पी.एच. स्तर जैसी अन्य विशेषताओं को निर्धारित करने हेतु मृदा परीक्षण किया जाता है। मृदा परीक्षण द्वारा मिट्टी की उर्वरता या मिट्टी की अपेक्षित विकास क्षमता को निर्धारित किया जा सकता है जिसके आधार पर पोषक तत्वों की कमी, अत्यधिक संभावित विषाक्तता एवं उर्वरता संबंधी मृदा तंत्र में गैर आवश्यक खनिजों की उपस्थिति से संभावित दुष्प्रभाव का पता लगाया जा सकता है। मृदा की रासायनिक विश्लेषण द्वारा मिट्टी की प्रतिक्रिया, लवणता, ई.सी., कुल कैल्शियम कार्बोनेट मात्रा, चूने एवं जिप्सम की आवश्यकता, विद्यमान कार्बनिक पदार्थ, और मुख्य पोषक तत्व जैसे की नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, ह्यूमस, कुल गंधक की मात्रा, सूक्ष्म तत्व तथा अन्य भौतिक विशेषताओं (क्षमता, पारगम्यता, घनत्व) का निर्धारण किया जाता है।

मृदा परीक्षण क्यों जरूरी है?

एक सतत कृषि उत्पादन प्रणाली के लिए प्रायः कृषि निवेशों के संतुलित उपयोग की आवश्यकता होती है। मृदा परीक्षण द्वारा समस्या वाली मिट्टी की संरचना, उर्वरता एवं मृदा संशोधनों की आवश्यकता का पता लगाया जा सकता है। (चित्र 1)

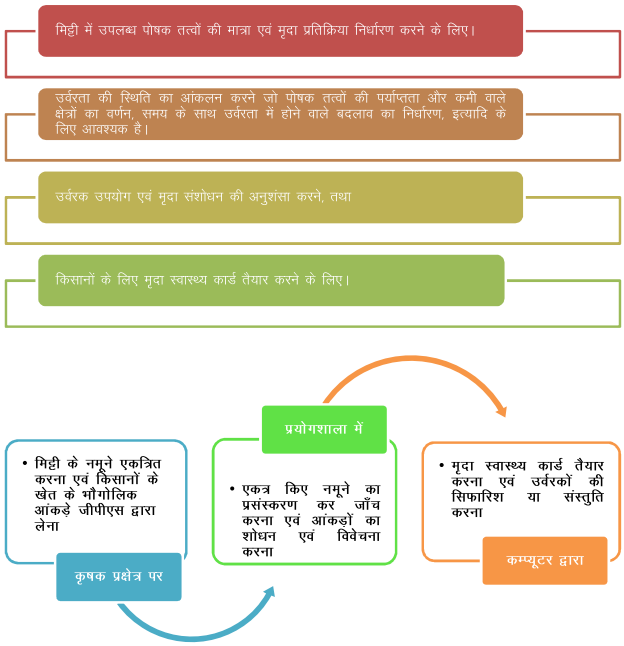

चित्र 1. किसान के खेतों से लेकर प्रयोगशाला तक मृदा परीक्षण प्रक्रिया का अवलोकन

मृदा परीक्षण के उद्देश्य

मृदा का नमूना एकत्र करने की विधियाँ

मृदा परीक्षण प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है मृदा का सही नमूना एकत्र करना। मृदा परीक्षण तभी सटीक होगा, जब खेत में से सही प्रतिनिधिक नमूना एकत्र किया जाए। एक खेत, अगर अपेक्षाकृत समान है तथा एक हैक्टेयर क्षेत्रफल से अधिक नहीं है तो उसे एक नमूना इकाई के रूप में माना जा सकता है। नमूना एकत्र करते समय खेत की ढलान, मिट्टी का रंग, बनावट, प्रबंधन एवं फसल प्रतिरूप को ध्यान में रखना आवश्यक है। इस प्रकार मिश्रित मिट्टी का नमूना जो पर्याप्त रूप से प्रक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता हो को एकत्र किया जाना चाहिए। जाँच किए जाने वाले खेत/प्रक्षेत्र से कम से कम 10 भिन्न-भिन्न जगहों से लगभग 15 सें.मी. गहराई से सतही मिट्टी को एकत्रित किया जाना चाहिए। इन दस जगहों से एकत्रित सतही मिट्टी को भली प्रकार मिलाकर, इसमें से केवल 500 ग्राम प्रतिनिधि नमूने को प्रयोगशाला में जाँच के लिए भेजा जाना चाहिए। मृदा का एक अच्छा नमूना एकत्र करने के लिए उचित उपकरणों का उपयोग आवश्यक है। नम एवं नरम मिट्टी से नमूना एकत्र करने के लिए कुदाल या खुरपी उपयुक्त उपकरण हैं। यदि नमूना अधिक नमी वाली या गीली जगह से एकत्र करना हो तो 'पोस्ट होल आगर' एवं यदि नमूना सूखी एंव ठोस जमीन से एकत्र करना हो तो 'पेंचनुमा (स्क्रू टाइप) आगर' का प्रयोग किया जाना चाहिए।

खेत से मृदा का नमूना एकत्र करने के उपकरण

मृदा परीक्षण हेतु नमूना एकत्र करने के लिए बहुत से उपकरणों का प्रयोग किया जाता है (चित्र 2)। उदाहरणतः कुदाल/खुरपी, बरमा, पॉलीथीन, बाल्टी, स्केल/पटरी, पेन/पेंसिल, मोटे कागज की शीट, पॉलीथीन शीट, नमूना एकत्र करने के लिए थैला, इत्यादि।

चित्र 2. मृदा नमूना एकत्रित करने में सहायक उपकरण

खेत से मिट्टी का नमूना एकत्र करना

- सर्वप्रथम मिट्टी की इकाई (या भूखण्ड) का निर्धारण करें और चुने हुए भूखण्ड के ऊपर एक व्यास/आड़ी रेखा खीचें (चित्र 3)।
- जिस स्थान से मिट्टी का नमूना एकत्र किया जाता है, उसे कुदाल से साफ कर लें।
- विपरीत दिशा में खड़े होकर मिट्टी का एक ढेला हटा लें।
- ऐसा करने से 'वी' आकार का एक गड्ढा बन जाएगा। जैसा की चित्र 4 में दर्शाया गया है इसकी गहराई 0-15 या 0-30 से.मी. होनी चाहिए।
- गड्ढे के दोनों ओर की बाहरी सतह से ऊपर से नीचे की ओर मिट्टी का लगभग आधा इंच मोटा टुकड़ा बाहर निकाल लें। इस टुकड़े को 'फरौ-स्लाइस' या 'कुण्ड का टुकड़ा' भी कहा जाता है। मिट्टी का यह टुकड़ा उठाने के लिए कुदाल का इस्तेमाल भी किया जा सकता है।
- 8-10 या कभी-कभी 20-30 स्थानों से 'फरौ-स्लाइस' या 'कुण्ड के टुकड़े' इक्कट्ठे कर लें।
- मिट्टी की जगह को एक रंजक (क्रिस-क्रास) से या च्छिक रूप से चुनें। संपूर्ण भूखंड को विभिन्न साइट में बाँटें। जिस मृदा में कोई स्थानीय समस्या हो उसे साइट के रूप में न चुनें।
- ऊपर बताई गई विधि से एकत्र की गई बल्क मिट्टी को 250-500 ग्राम तक तिमाही प्रक्रिया द्वारा कम करें (चित्र 5)।

मृदा नमूना एकत्र करने की विभिन्न विधियाँ

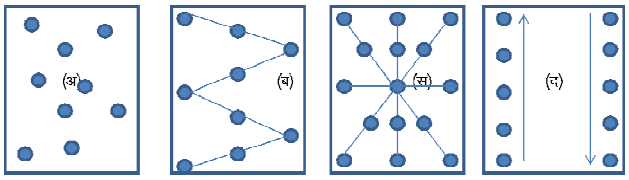

चित्र 3. नमूना एकत्र करने की विभिन्न विधियाँ (अ) नेटवर्क, (ब) वक्र-योजना, (स) तिरछे में (द) स्थायी फसलें या खड़ी फसलें

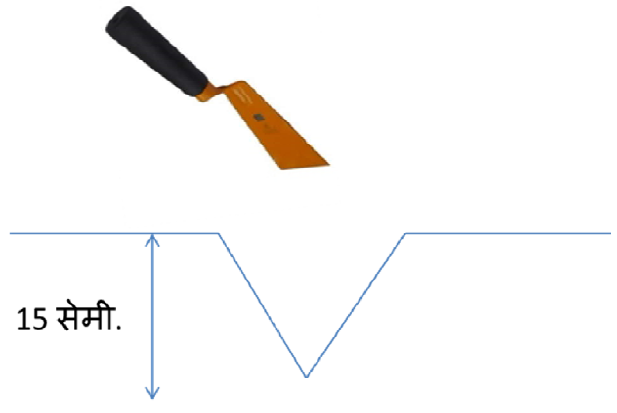

चित्र 4 खेत में 'अ' आकार में नमूना निकालें

जाँच से पूर्व नमूना तैयार करने की विधि

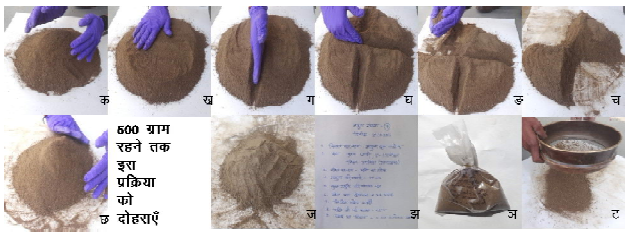

चित्र 4. मिट्टी के नमूने को जाँच से पूर्व तैयार करने की विधि

(क) मृदा नमूना एकत्र करना; (ख) मिट्टी को लकड़ी के फर्श पर मोटी परत के रूप में फैलाना, (ग से ड़) एक चैथाई नमूना लेने की विधि (नमूने के चार भाग करें एवं विपरीत भागों को हटा दें), (च से छ) बचे हुए दो चैथाई भागों को मिलाएँ एवं इस विधि को मृदा का लगभग 500 ग्राम नमूना बचने तक दोहराए, (ज सें) एक प्लास्टिक की थैली के अंदर एवं बाहर लेबल पर बताई गई जानकारी लिखकर चस्पा दें तथा नमूने को इस थैली में डाल दें। थैली को प्रयोगशाला में जाँच के लिए भेंजें। (ट) मृदा परीक्षण से पूर्व 2 मि. मी. आकार की स्टील की छन्नी से मृदा प्रसंस्करण।

लेबल पर लिखी जानी वाली महत्वपूर्ण जानकारी

- कृषक का नाम, पता एवं दूरभाष नं.
- प्रक्षेत्र संख्या एवं भौगोलिक आँकड़े/जीण् पीण् एसण् संख्या निर्देशांक
- मृदा की बनावट (बलुआ/क्ले/लोम)
- सिंचाई व्यवस्था एवं जल निकासी प्रणाली की उपलब्धता
- उच्च/मध्यम/निम्न ऊँचाई क्षेत्र
- मिट्टी के नमूने की गहराई (0-15/15-30/30-45 से.मी.)
- पिछली फसल की जानकारी- फसल का नाम एवं प्रजाति
- उपयोग किए गए जैविक खाद एवं उर्वरकों के नाम एवं मात्रा यदि लागू हो एवं प्राप्त उपज
- आगामी उगाए जाने वाली फसल की जानकारी- नाम, प्रजाति, मौसम (खरीफ/रबी)
- समस्या, यदि कोई हो तो,
- नमूना एकत्र करने की तिथि
- किसान के हस्ताक्षर

नमूना लेते समय बरतें यह सावधानियाँ

नमूना खेत का सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए। रंग, ढलान, उपजाऊ क्षमता की दृष्टि से भिन्न लगने वाले भागों से अलग-अलग नमूने लें। प्रयोग में लाये जाने वाले औजार, थैलियाँ, आदि बिल्कुल साफ होनी चाहिए। नमूनों को खाद, उर्वरक, दवाईयों, आदि के सम्पर्क में न आने दें। नमूना लेते समय सतह पर पड़ा हुआ कूड़ा, खरपतवार, गोबर, आदि पहले ही हटा दें। पेड़ों के नीचे, खाद के गड्ढ़ों के आस-पास तथा खेत की मेड़ों से लगभग 2 मीटर दूरी तक नमूने न लें।

मृदा परीक्षण का सही समय

फसल बोने या रोपाई करने के एक माह पूर्व, खाद व उर्वरकों के प्रयोग से पहले ही मिट्टी परीक्षण करायें। आवश्यकता हो तो खड़ी फसल में से भी कतारों के बीच से नमूना लेकर परीक्षण के लिए भेज सकते हैं ताकि खड़ी फसल में पोषण सुधार किया जा सके।

मृदा परीक्षण प्रयोगशालायें

देश के लगभग प्रत्येक जिले में मृदा परीक्षण प्रयोगशालायें है। इसके लिए अपने निकटतम कृषि विकास अधिकारी या खण्ड विकास अधिकारी से सम्पर्क कर सकते हैं। वर्तमान में देश में लगभग 3887 जिला स्तरीय एवं क्षेत्रीय स्तर की मृदा परीक्षण प्रयोगशाला और मोबाइल लैब स्थापित की गई हैं। वर्तमान में उत्तराखंड में कुल 44 मृदा परीक्षण प्रयोगशालायें सक्रिय रूप से कार्य कर रही हैं।

रासायनिक जाँच

मृदा विश्लेषण विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं का एक संग्रह है जो न केवल मिट्टी में उपलब्ध पौधों के पोषक तत्वों की मात्रा

निर्धारित करते हैं, साथ ही पौधे के पोषण एवं मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए मृदा की रासायनिक, भौतिक एवं जैविक गुणों का भी निर्धारण करता है। मृदा की रासायनिक विश्लेषण द्वारा मिट्टी की प्रतिक्रिया (पी. एच.), लवणता (ई.सी.), कुल कैल्शियम कार्बोनेट मात्रा, चूने की आवश्यकता, जिप्सम की आवश्यकता, विद्यमान कार्बनिक पदार्थ, और मूल पौध पोषक तत्व, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, ह्यूमस, कुल गंधक की मात्रा, सूक्ष्म तत्व तथा अन्य भौतिक विशेषताओं (क्षमता, पारगम्यता, घनत्व) का निर्धारण किया जाता है।

विश्लेषण की विवेचना

मृदा परीक्षण प्रक्रिया में सबसे बड़ी चुनौती परीक्षणों की विवेचना करना है। यह आवश्यक है कि पौधों के पोषक तत्वों के अनुप्रयोगों के प्रति फसल की प्रतिक्रियाओं के आंकड़ों का मृदा परीक्षण के परिणामों से अंशशोधन अवश्य किया जाना चाहिए (चित्र 6), तभी प्रयोग किए गए पोषक तत्वों की दर से प्राप्त हुई उपज को मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा से संबंधित किया जा सकता है। दीर्घकालिक प्रक्षेत्र प्रयोगों के आधार पर विभिन्न प्रकार की मृदा पर किए गए परीक्षण अंशांकन अध्ययनों का उपयोग एक निश्चित फसल के लिए एक निश्चित मृदा परीक्षण स्तर पर पोषक तत्वों की मात्रा अनुशंसित करने के लिए किया जाता है।

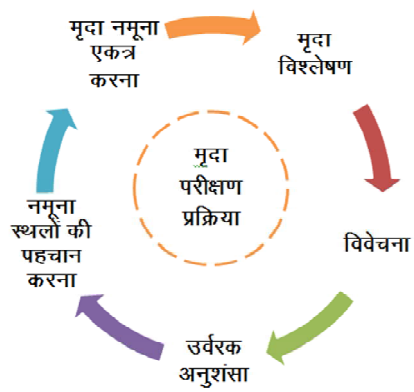

चित्र 6. मृदा परीक्षण प्रक्रिया नमूना एकत्र करना, मृदा विश्लेषण, विवेचना एवं उर्वरक अनुशंसा का समुच्चय।

फसलवार उर्वरक संस्तुति

दीर्घकालिक प्रक्षेत्र परीक्षण के परिणामों के आधार पर उर्वरकों की अनुशंसा या निर्धारण में संशोधन किए जाने की आवश्कता है। तालिका 1 में विभिन्न कृषि-पारिस्थितियों के लिए दीर्घकालिक प्रक्षेत्र प्रयोगों के आधार पर विभिन्न फसलों के लिए उर्वरक की संस्तुत मात्रा प्रदर्शित की गई है।

मृदा परीक्षण के परिणामों का मूल्यांकन/रेटिंग

मृदा परीक्षण के परिणामों के आधार पर मिट्टी को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा गया है (तालिका 2 एवं 3)।

मृदा परीक्षण के लाभ

मृदा परीक्षण रिर्पोट प्रायः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, जिप्सम तथा चूने के लिए उचित उर्वरक प्रयोग की संस्तुति प्रदान करने में सहायक है। साथ ही मृदा परीक्षण फसल की सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता को निर्धारित भी करता है। यदि कृषक संस्तुत मात्रा से बहुत कम उर्वरक का प्रयोग करते हैं, तो फसल कम पैदा होगी तथा मुनाफा भी कम होगा। वहीं, अगर संस्तुत मात्रा से अधिक उर्वरक का प्रयोग करेंगे, तो समय एवं पैसे का अनावश्यक व्यय तो होगा ही, साथ ही पोषक तत्वों के अपवाह के कारण पर्यावरण को भी क्षति होगी। इसका आशय यह है कि मृदा परीक्षण फार्म प्रबंधन का एक साधन है जिसके द्वारा कम निवेश से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है तथा पर्यावरणीय जोखिम को भी कम किया जा सकता है। इसके अलावा फसल की परिपक्वता एवं गुणवत्ता में सुधार, रोग और कीट क्षति के प्रति सहिष्णुता एवं फसल में अधिक वृद्धि भी मृदा परीक्षण के अतिरिक्त लाभ हैं।

निष्कर्ष

फसलों में उर्वरक की संस्तुत मात्रा निर्धारण के लिए मृदा परीक्षण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मृदा परीक्षण से किसानों को अपने खेत की मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की वास्तविक मात्रा एवं भावी सस्य स्वरूप के बारे में पता चलता है। वे फसल के बेहतर विकास के लिए रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग किए बिना सावधानीपूर्वक योजना बना सकते हैं। मृदा परीक्षण के आधार पर कृषकों को प्रति 3 वर्ष के लिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड भी दिए जा रहे हैं ताकि वह खेत में उपलब्ध पोषक तत्वों का कुशल प्रबंधन कर अधिक पैदावार प्राप्त कर सकें। इसके तहत किसानों को 725 लाख मृदा स्वास्थ्य कार्ड वितरित किये जा चुके हैं।

तालिका 1. फसलवार उर्वरक की सिफारिश

फसल	उर्वरता कक्षा	मात्रा (नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटेशियम किलो प्रति हैक्टेयर)			प्रयोग का समय
		N	P_2O_5	K_2O	
धान, खरीफ, प्रत्यारोपित	उच्च	20	15	15	प्रत्यारोपण के समय ½ नाइट्रोजन, पूरा फास्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग करे एवं प्रत्यारोपण के 30 से 35 दिनों के बाद बचे हुए आधा भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें।
	मध्यम	40	20	20	
	निम्न	50	25	25	
धान, खरीफ, कम समय	उच्च	40	20	20	प्रत्यारोपण के समय ¼ नाइट्रोजन, पूरा फास्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग करे, प्रत्यारोपण के 15 दिनों के बाद ½ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें एवं प्रत्यारोपण के 30 से 35 दिनों के बाद बचे हुए ¼ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें।
	मध्यम	50	25	25	
	निम्न	60	30	30	
धान, खरीफ, मध्यम और लंबी अवधि	उच्च	50	25	25	प्रत्यारोपण के समय ¼ नाइट्रोजन, पूरा फास्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग करे, प्रत्यारोपण के 15 दिनों के बाद ½ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें एवं प्रत्यारोपण के 40 से 45 दिनों के बाद बचे हुए ¼ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें।
	मध्यम	60	30	30	
	निम्न	80	40	40	
गेहूँ (असिंचित)	उच्च	40	20	15	बुवाई के समय ¼ नाइट्रोजन पूरा फॉस्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग तथा 21 दिन के बाद ½ एवं 40 से 45 दिन के बाद बचे हुए ¼ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें।
	मध्यम	60	30	20	
	निम्न	70	40	30	
गेहूँ (सिंचित)	उच्च	100	40	30	बुवाई के समय ¼ नाइट्रोजन पूरा फास्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग तथा 21 दिन के बाद ½ एवं 40 से 45 दिन के बाद बचे हुए ¼ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें।
	मध्यम	120	50	40	
	निम्न	130	60	60	
मक्का	उच्च	60	45	20	बुवाई के समय ¼ नाइट्रोजन पूरा फॉस्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग तथा 30 दिन के बाद बचा ½ एवं 50 से 60 दिन के बाद बचे हुए ¼ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें।
	मध्यम	80	60	30	
	निम्न	100	75	40	
दलहन (मसूर, गहत, राजमा)	उच्च	15	45	15	बुवाई के समय पूरे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग करें
	मध्यम	20	60	20	
	निम्न	25	75	30	
लघुधान्य फसलें (मंडुवा, मादिरा)	उच्च	35	15	15	बुवाई के समय ½ नाइट्रोजन, पूरा फास्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग तथा ½ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव पहली निराई के बाद करें।
	मध्यम	40	20	20	
	निम्न	50	30	30	
सब्जियाँ (प्याज, टमाटर, भिन्डी, शिमला मिर्च)	उच्च	80	40	40	प्रत्यारोपण के समय ½ नाइट्रोजन, पूरा फॉस्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग तथा 25 से 30 दिन के बाद ¼ नाइट्रोजन का छिड़काव करें एवं 45 से 55 दिन के बाद बचे हुए ¼ भाग नाइट्रोजन का छिड़काव करें।
	मध्यम	100	50	50	
	निम्न	120	60	60	

तालिका 2. मृदा के पीएच एवं विद्युत चालकता के आधार पर मृदा का वर्गीकरण

पी.एच.	वर्ग	विद्युत चालकता	वर्ग
5.5 से कम	अम्लीय	1 से कम	सामान्य
5.5–6.5	आंशिक अम्लीय	1–2	अंकुरण के अनुकूल नहीं
6.5–7.5	तटस्थ	2–3	संवेदनशील फसलों के लिए महत्वपूर्ण
7.5–8.5	आंशिक क्षारीय	3 से अधिक	अधिकतर फसलों के लिए हानिकारक
8.5 से अधिक	क्षारीय		

तालिका 3. उर्वरता की स्थिति के लिए मिट्टी परीक्षण मूल्य

श्रेणिया	कार्बनिक कार्बन	उपलब्ध नाइट्रोजन	उपलब्ध फास्फोरस	उपलब्ध पोटेशियम	उपलब्ध गंधक	उपलब्ध डीटीपीए निकालने योग्य				बोरान गर्म पानी में घुलनशील	मोलिब्डेनम अमोनियम ऑक्सालेट निकालने योग्य (पीएच 3.3)
						आयरन	मैंगनीज	जिंक	कॉपर		
	ग्राम प्रति किलोग्राम	किलोग्राम प्रति हैक्टर				मिलीग्राम प्रति किलोग्राम					
उच्च	> 7.5	> 550	> 25	> 335	> 35	> 9	> 7	> 1.0	> 0.4	> 2.0	> 0.4
मध्यम	5.0–7.5	280–550	12.5–25	135–335	22.4–35	4.5–9	3.5–7	0.6–1.0	0.2–0.4	0.5–2.0	0.2–0.4
निम्न	< 5.0	< 280	< 12.5	< 135	< 22.4	< 4.5	< 3.5	< 0.6	< 0.2	< 0.2	< 0.2

भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) एवं सुदूर संवेदी प्रणाली (रिमोट सेंसिंग) के माध्यम से ऊसर भूमि का आंकलन

आर.एच. रिज़वी, ए.के. मण्डल, संजय अरोरा, अरिजीत वर्मन, सुनील कुमार झा, पी.सी. शर्मा एवं चंद्रशेखर सिंह

भा.कृ.अ.प.-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ

सारांशः

प्राकृतिक संसाधनों में मिट्टी एक महत्वपूर्ण संसाधन है। हमारे देश में विभिन्न प्रकार की मिट्टियां पायी जाती है जिसमें से अधिकांश उपजाऊ होती है। परंतु जब मिट्टी में लवणता अधिक हो जाती है तब यह खेती के लायक नहीं रह जाती है। मिट्टी में लवणता बढ़ने के कारण फसलों की उत्पादकता कम हो जाती है। अधिकतर नहरों के पास की भूमि/मिट्टी में लवणता अधिक पायी जाती है। जिस मिट्टी की लवणता (pH>9.5) है वहाँ खेती संभव नहीं है। अधिक लवणता वाली मिट्टी का उपचार करके उन्हें खेती लायक बनाया जा सकता है। परंतु इसके लिए किसी क्षेत्र या जिले में अधिक लवणता वाली भूमि के क्षेत्रफल का सही आंकलन आवश्यक है। इस आंकलन के लिए ऐसी विधि या तरीका अपनाने की जरूरत है जिसमें कम समय लगे और खर्चा भी कम आये।

भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) एवं सुदूर संवेदी प्रणाली (रिमोट सेंसिंग) ऐसे माध्यम है जिनके द्वारा बड़े क्षेत्रों जैसे जिलों व राज्यों का सही-सही आंकलन कम समय में किया जा सकता है। इन तकनीकियों का उपयोग प्राकृतिक संसाधनों के आंकलन एवं निगरानी करने में किया जा सकता है। इसी तरह अधिक लवणता वाली मिट्टी के क्षेत्रों का आंकलन भी दोनों तकनीकियों के माध्यम से संभव है। भारतीय सुदूर संवेदी उपग्रहों द्वारा पृथ्वी के उच्च कोटि के चित्रण प्राप्त किये जा सकते है जैसे LISS-IV चित्रण।

इन सुदूर संवेदी चित्रणों का उचित विश्लेषण करके भूमि के विभिन्न उपयोगों और आच्छादनों के क्षेत्रों का निर्धारण किया जा सकता है। पाठक (2000) के आंकलन के अनुसार भारत में लगभग 8.6 मिलियन हेक्टेयर भूमि में अधिक लवणता पायी जाती है। लवणता प्रभावित मिट्टी अधिकांशता उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, ओडीशा, केरला एवं तमिलनाडु राज्यों में पायी जाती है। इसमें से 2.8 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र गंगा के कछार में मौजूद है। मण्डल और शर्मा (2005) के अध्ययन के अनुसार लवणता प्रभावित मिट्टी के क्षेत्र मुख्यतः पुराने कछारों की सिंचित भूमि में पाये जाते है। शर्मा (2004) के आंकलन के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में लवणता प्रभावित मिट्टी के अंतर्गत क्षेत्रफल सारणी-1 में दिये गये हैं।

हाई रिज्योलूशन सुदूर संवेदी चित्रणों की उपलब्धता के कारण भूमि की मौजूदा स्थिति का सही-सही आंकलन करना संभव है। इन चित्रणों के विश्लेषण से मिट्टी के विभिन्न प्रकार (सामान्य, अम्लीय, क्षारीय) भी ज्ञात किये जा सकते है। ऊसर भूमि के निर्धारण एवं आंकलन हेतु विभिन्न स्पेक्ट्रल इंडेक्सों का उपयोग किया जाता है जैसे- नार्मलाइज्ड डिफ्रेंस वेजीटेंशन इंडेक्स (एन.डी.वी.आई), नार्मलाइज्ड डिफ्रेंस सेलेनिटी इंडेक्स (एन.डी.एस.आई), ब्राइटनेस इंडेक्स आदि। इन इंडेक्सों को मृदा विशलेषण से प्राप्त pH मात्रा के साथ संबंध स्थापित करके बाकी क्षेत्रों की मृदा की वर्तमान स्थिति का मानचित्र तैयार किया जा सकता है और विभिन्न मृदा प्रकारों का क्षेत्रफल भी ज्ञात कर सकते है। लैण्डसैट-8 के मार्च और मई के सुदूर संवेदी चित्रणों से ज्ञात सेलेनिटी इंडेक्सों में भिन्नता पायी गयी (सारणी-2)। उपयोग में आने वाले प्रमुख सेलेनिटी इंडेक्सों के फॉर्मूले सारणी-3 में दिये गये हैं। इस तरह से मानचित्र द्वारा लवण ग्रस्त मृदाओं के सुधार हेतु स्ट्रैटजी (योजना) बनाना आसान होगा।

सारणी-1: भारत के विभिन्न राज्यों में लवणता प्रभावित मिट्टी के अंतर्गत क्षेत्रफल

राज्य	अम्लीय मिट्टी (हे.)	क्षारीय मिट्टी (हे.)	कुल योग
आंध्र प्रदेश	7,75,598	1,96,609	2,74,207
बिहार	47,301	1,05,852	1,53,153
गुजरात	16,80,570	5,41,430	22,22,000
हरियाणा	49,157	1,83,399	2,32,556
कर्नाटक	1893	1,48,136	1,50,029
महाराष्ट्र	1,84,089	4,22,670	6,06,759
मध्य प्रदेश	0	1,39,720	1,39,720
ओडीशा	1,47,138	0	1,47,138
पंजाब	0	1,51,717	1,51,717
राजस्थान	1,95,571	1,79,371	3,74,942
तमिलनाडु	13,231	3,54,784	3,68,015
उत्तर प्रदेश	21,989	13,46,971	13,68,960
प. बंगाल	4,41,272	0	4,41,272

स्रोतः शर्मा, आर.सी. राव, बी आर-एम एवं सक्सेना, आर.के. (2004)

सारणी-2: लैण्डसैट-8 के मार्च और मई 2019 के सुदूर संवेदी चित्रणों से ज्ञात सेलेनिटी इंडेक्सों

स्प्रेक्टल	लैण्डसैट–8 (मार्च, 2019)			लैण्डसैट–8 (मई, 2019)		
	न्यूनतम	अधिकतम	औसत	न्यूनतम	अधिकतम	औसत
S1	0.026	0.259	0.05	0.053	0.276	0.15
S2	0.069	0.542	0.34	0.106	0.548	0.33
S3	0.039	0.370	0.08	0.076	0.395	0.21
S4	0.023	0.194	0.04	0.042	0.210	0.12
एन.डी.एस.आई.	-0.896	0.196	-0.08	-0.772	0.267	-0.20
ई.वी.आई.	-0.071	0.845	0.52	-0.132	0.649	0.14
एस.आर.	-0.857	0.167	-0.72	-0.743	0.267	-0.21

सारणी-3: प्रमुख सेलेनिटी इंडेक्सों के फॉर्मूले

क्र.सं.	सेलेनिटी इंडेक्स	बैण्ड अनुपात
1	सेलेनिटी इंडेक्स–1 (S1)	$S1 = \sqrt{B \times R}$
2	सेलेनिटी इंडेक्स–2 (S2)	$S2 = \sqrt{G \times R}$
3	सेलेनिटी इंडेक्स–3 (S3)	$S3 = \sqrt{G^2 \times R^2}$
4	सेलेनिटी इंडेक्स–4 (S4)	$S4 = \sqrt{G^2 + R^2 + NIR^2}$
5	सेलेनिटी इंडेक्स–5 (S5)	$S5 = \frac{B}{R}$
6	एन.डी.एस.आई. (NDSI)	$NDCI = \frac{R - NIR}{R + NIR}$
7	ब्राइटनेस इंडेक्स (BI)	$BI = \sqrt{R^2 + NIR^2}$

B-नीला बैण्ड; G-हरा बैण्ड; NIR-नियर इंफ्रारेड बैण्ड

नेशनल रिमोट सेंसिंग सेंटर, हैदराबाद ने भारत के विभिन्न राज्यों में नहरों के कमांड क्षेत्रों के अंतर्गत ऊसर भूमि में महत्वपूर्ण बदलाव को सुदूर संवेदी चित्रणों में दर्शाया है (चित्र-1)।

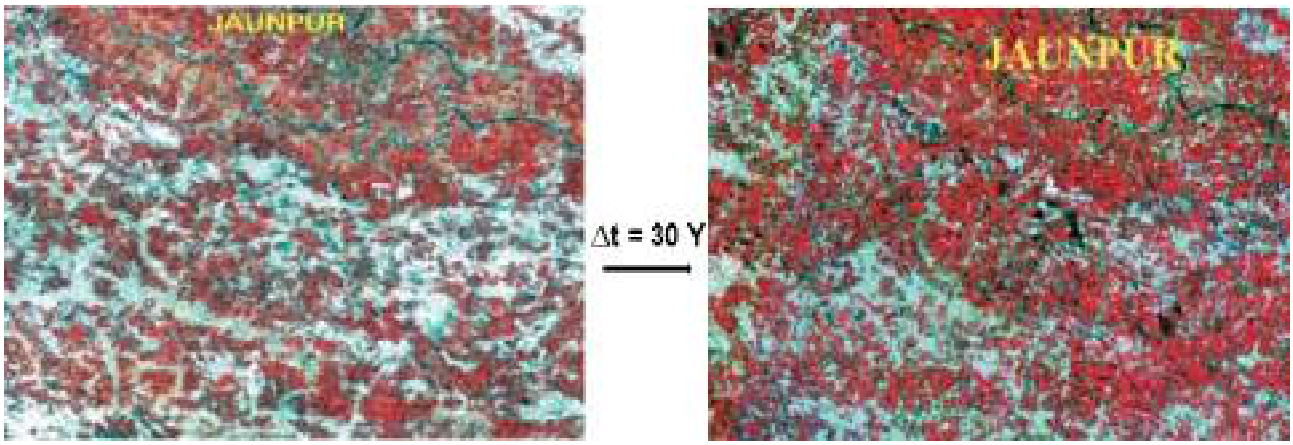

चित्र 1. 30 वर्षों में मृदा लवणता क्षेत्र में परिवर्तन के सुदूर संवेदी चित्रण

पर्वतीय क्षेत्रो में जैविक खेती हेतु सिंचित व असिंचित धान की उन्नत प्रजातियाँ

जे. पी. आदित्य, अनुराधा भारतीय, जगदीश कुमार आर्या एवं लक्ष्मी कान्त

भा.कृ.अनु.प.-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

सारांश

कृषि में की गई रासायन आधारित तकनीकी प्रगति भारत मे हरित क्रांति लाई लेकिन, इसने हमारे पारिस्थितिक पर बहुत नकारात्मक प्रभाव डाला। इसको ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने जैविक खेती पर राष्ट्रीय परियोजना (एनपीओएफ) की शुरूआत एक पायलट परियोजना के रूप में 1 जनवरी 2004 को जैविक खेती को बेहतर बनाने और बढ़ावा देने के लिए केन्द्र व राज्य सरकार निरन्तर प्रयासरत है तथा राज्य अपनी जैविक खेती नीति बना रहे है, जिसमे उत्तराखण्ड भी शामिल है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में जैविक कृषि प्रोत्साहन हेतु जैविक संतृप्तीकरण योजना के अन्तर्गत 10 विकासखण्ड चयनित है जहाँ कृषि, उद्यान, पशुपालन, मत्स्य विकास, जड़ी-बूटी, रेशम विकास एवं वन विभाग आदि द्वारा संचालित किये जाने वाले समस्त कार्य जैविक आधारित है भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में जैविक खेती के लिए धान की सिंचित (वी. एल. धान 85, वी. एल. धान 65 एवं वी. एल. सिक्किम धान 4) व असिंचित (विवेक धान 154, वी. एल. धान 156, वी. एल. धान 159, वी. एल. धान 207, वी. एल. धान 208, वी. एल. धान 209, वी. एल. धान 210 एवं वी. एल. धान 211) क्षेत्रो हेतु उन्नत प्रजातियाँ विकसित की गयी है।

साठ के दशक की शुरुआत में खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों का सामना करने के लिए, रासायनिक खेती पर ध्यान केंद्रित किया गया था, जिसे उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय रसायन विशेषज्ञ लिबिग द्वारा प्रचारित किया गया था। खनिज आधारित खेती की ओर बदलाव और कृषि में की गई रासायनिक और तकनीकी प्रगति भारत मे हरित क्रांति लाई। निसंदेह, रासायनिक आधारित कृषि प्रक्रिया ने उच्च उत्पादकता प्रदान की और बढ़ती भारतीय आबादी के लिए खाद्य असुरक्षा के भय मनोविकार से देश को बाहर निकाला। लेकिन, इसने हमारे पारिस्थितिक पर बहुत नकारात्मक प्रभाव डाला जैसे कि मिट्टी के स्वास्थ्य में गिरावट, कम पैदावार, नए कीट व बीमारियों का उद्भव, पर्यावरण के अनुकूल सूक्ष्म जीवों का सफाया और खाद्य श्रृंखला में जहरीले रसायनों का प्रवेश।

रासायनिक आधारित खेती के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने एक पायलट परियोजना के रूप में 57.05 करोड़ रुपये के साथ जैविक खेती पर राष्ट्रीय परियोजना (एनपीओएफ) की शुरूआत 01.01.2004 (दसवीं पंचवर्षीय योजना) में की जिसे ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान भी जारी रखा गया और बारहवीं योजना के मध्य में इस योजना का विलय "सतत कृषि पर राष्ट्रीय मिशन (एनएमएसए)" के साथ कर दिया गया। देश में जैविक खेती को और बेहतर बनाने के लिए भारत सरकार ने 2015-16 के बजट में 300 करोड़ रुपये के परिव्यय के साथ एक नई योजना "परंपरागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई)" की शुरूआत की।

कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार) के हाल के आँकड़ों (2020-21) के अनुसार हमारे देश में जैविक खेती का क्षेत्रफल लगभग 4.33 मिलियन हेक्टेयर है। जिसमें 61 प्रतिशत (2.65 मि. हे.) खेती योग्य क्षेत्र तथा 39 प्रतिशत (1.68 मि. हे.) जंगली क्षेत्र है। सभी राज्यों की तुलना में, मध्य प्रदेश में जैविक प्रमाणीकरण क्षेत्रफल सबसे ज्यादा है, इसके बाद राजस्थान, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर और कर्नाटक का स्थान है। 2016 के दौरान, सिक्किम ने अपनी पूरी खेती योग्य भूमि (75000 हेक्टेयर से अधिक) को जैविक प्रमाणीकरण के तहत परिवर्तित करने का एक उल्लेखनीय गौरव हासिल किया है और सिक्किम, भारत ही नहीं बल्कि दुनिया का पहला जैविक राज्य है।

भारत मे लगभग 3.49 मिलियन मीट्रिक टन प्रमाणित जैविक उत्पादों का उत्पादन किया जाता है जिसमें सभी प्रकार के खाद्य उत्पाद शामिल हैं विभिन्न राज्यों में मध्य प्रदेश सबसे बड़ा उत्पादक है इसके बाद महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान और उत्तर प्रदेश का स्थान है। जैविक उत्पाद में सबसे ज्यादा उत्पाद तिलहन में होता है इसके बाद चीनी फसलें, धान्य एवं मिलेट आदि हैं।

2020-21 के दौरान निर्यात की कुल मात्रा 8.88 लाख मीट्रिक टन थी। जैविक खाद्य निर्यात प्राप्ति लगभग 707849.52 लाख थी। जैविक उत्पादों को संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ, कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन, कोरिया गणराज्य, इजराइल, स्विट्जरलैंड, इक्वाडोर, वियतनाम, ऑस्ट्रेलिया आदि को निर्यात किया जाता है। निर्यात मूल्य प्राप्ति के संदर्भ में प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ उत्पादों में सोया मील

(57 प्रतिशत) सबसे आगे हैं इसके बाद तिलहन (9%), धान्य एवं मिलेट (7%) आदि है।

जैविक खेती हमारे देश के लिए कोई नई नहीं है। हरित क्रांति से पहले पूरी खेती जैविक खेती हुआ करती थी जो पूर्ण रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थी। एक ब्रिटिश वैज्ञानिक सर अल्बर्ट हॉवर्ड जिसे 1905 में ब्रिटिश सरकार ने भारत में कृषि में सुधार के उपायों का अध्ययन करने और सुझाव देने के लिए भेजा था उन्होंने अपनी पुस्तक 'द एग्रीकल्चरल टेस्टामेंट' जिसे आधुनिक जैविक खेती का बाइबिल कहा जाता है, में वर्णित किया है कि कृषि क्षेत्रों में भारतीय मिट्टी को बिना किसी कीट के उपजाऊ पाया। जो दर्शाता है कि रासायनिक खेती व हरित क्रांति की शुरुआत से बहुत पहले भारतीय कृषि प्रणाली जैविक खेती के प्राकृतिक सिद्धांतों के अनुरूप थी।

'जैविक खेती' शब्द के अर्थ और परिभाषा में एकरूपता नहीं है कृषि मंत्रालय (कृषि और सहकारिता विभाग) और आईसीएआर, इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट (आईएफओएएम), खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ), और वाणिज्य मंत्रालय राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (एनपीओपी) के तहत व्यापार और वाणिज्य के उद्देश्य से इसे विभिन्न रूप से परिभाषित किया है। परन्तु जैविक खेती का बुनियादी आयाम है कि यह प्राकृतिक संतुलन करती है और यह दो सिद्धांत पर काम करती है। पहला मिट्टी की उर्वरता, जैविक खाद और दूसरा कीट प्रबंधन इसमें बीमारी, कीट, खरपतवार का नियंत्रण करना शामिल है। जैविक खेती, खेती की वो सदाबहार पद्धति है जिससे पर्यावरण की शुद्धता, जल और वायु की शुद्धता और भूमि का प्राकृतिक स्वरूप बना रहता है। 13 राज्यों ने अपनी जैविक खेती नीति बना ली है, जिसमे उत्तराखण्ड भी शामिल है। उत्तराखण्ड में जैविक क्षेत्रफल 82,210 हेक्टेयर तथा 47,066 मीट्रिक टन प्रमाणित जैविक उत्पादों का उत्पादन किया जाता है उत्तराखण्ड के भौगोलिक क्षेत्रफल में पर्वतीय और मैदानी दोनों क्षेत्र शामिल है जिसमें 86 क्षेत्रफल पर्वतीय एवं 14 मैदानी है तथा पवतीय और मैदानी इलाकों में कृषि योग्य भूमि क्रमशः 56.8 प्रतिशत और 43.2 प्रतिशत है। मैदानी भागों में तो हरित क्रांति का प्रभाव दिखता है जहाँ रासायनों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है परन्तु पर्वतीय क्षेत्र हरित क्रांति से वंचित रह गया और आज भी ज्यादातर पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के साथ खेती की जाती है। पर्वतीय कृषि हमेशा से ही प्रकृति और पर्यावरण के अनुकूल रही है। हिमालयी क्षेत्र हमेशा बायोमास में समृद्ध रहे हैं। सीमित सिंचाई सुविधा, खंडित और छोटी भूमि जोत, और आधुनिक तकनीकी की अनुपलब्धता के बावजूद, आज भी कृषि यहाँ आजीविका का प्रमुख स्रोत है। उत्तराखण्ड राज्य जैव विविधता में समृद्ध है। राज्य के अंदर जलवायु में व्यापक अंतर, विभिन्न ऊँचाई स्तर और स्थलाकृति, विविध कृषि फसलों और प्राकृतिक वनस्पति के लिए एक वातावरण बनाता है जो विविध फसल उगाने के अनुकुल हैं। राज्य के अधिकांश हिस्सों में खरीफ और रबी में फसलें ली जाती हैं। धान, मंडुआ या रागी, झंगोरा और दालें खरीफ फसलों में मुख्य हैं जबकि गेहूँ, सरसों और जौ प्रमुख रबी फसलें हैं।

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र में कृषि काफी हद तक वर्षा पर निर्भर है इसके साथ ही बहुत कम रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग, सीमांत भूमि जोत, देशी मवेशियों को पालने की संस्कृति, पारंपरिक कृषि पद्धतियों का अभी भी काफी हद तक पालन किया जाना और दूरदराज के क्षेत्रों में किसानों की रसायनों तक पहुँच बहुत कम होना, ये सभी कारक प्रर्वतीय क्षेत्र में जैविक कृषि का समर्थन करने वाले है। उत्तराखंड राज्य ज्यादातर कृषि जलवायु क्षेत्र नम्बर 1 अर्थात् पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में स्थित है। उत्तराखंड राज्य के भीतर दो क्षेत्र हैं, पर्वतीय क्षेत्र तथा भाभर और तराई क्षेत्र। ऊँचाई में भिन्नता के आधार पर राज्य को पाँच प्रकार से विभाजित किया जा सकता है बाहरी हिमालय जिसमें तराई और भाभर शामिल हैं, उप-हिमालयी बेल्ट शिवालिक (300-1000 मीटर), लघु/मध्य हिमालय (1000-3000 मीटर), उच्च हिमालय (3000-7000 मीटर), और ट्रांस-हिमालय या टेथिस (7000 मीटर से ज्यादा) जैविक खेती का क्षेत्र ज्यादातर 1000-3000 मीटर की ऊँचाई के बीच का क्षेत्रफल है। इन व्यापक भौगोलिक विभाजनों के भीतर भी पर्वतीय क्षेत्रो में खेती की प्रथाओं में फिर से अंतर हैं जो विभिन्न शब्दों से नीचे परिलक्षित है।

काटिल

कृषि का यह रूप अब लगभग विलुप्त है यह पर्वतीय कृषि का एक आदिम रूप है और इसे सीढ़ीदार खेत बनाने का सबसे पहला चरण माना जाता है इसकी तुलना उत्तर-पूर्वी भारत की झूमिंग (स्थानांतरित खेती) से की जाती है। इसमें झाड़ी से ढकी वन भूमि को साफ और जला दिया जाता है फिर बीजों को राख जो कि खाद का एक मात्र रूप है पर प्रसारित किया जाता है, फिर बीज को ढकने के लिए भूमि को कुदाल से तोड़ा या खोदा जाता है इसमें न तो सिंचाई और न ही निराई-गुड़ाई की जाती है लेकिन फसलों का नियमित रोटेशन जैसे मंडुआ या रागी, चुआ, गहत, उगल, हल्दी, आदि का पालन किया जाता है। हर फसल के बाद भूमि तीन या अधिक वर्षों के लिए परती छोड़ दी जाती है।

उपराऊ

पर्वतीय क्षेत्रों में ऊपरी ढलानों की भूमि जिसमें खेती की जाती है उसे उपराऊ कहते है यह स्थायी रूप से सीढ़ीदार होता हैं तथा यह क्षेत्र अपेक्षाकृत उच्च स्तर पर बिना किसी सिंचाई के साधन के और ज्यादातर सूखी फसलों के लिए अनुकूल होता हैं। आमतौर पर उपराऊ सीढ़ीदार खेत तीन से छह मीटर चौड़े होते है जिसमें मंडुआ, झंगोरा, कौनी, भट, गहत, चुआ, उपराऊ धान आदि खरीफ फसलें बोई जाती है।

तलाऊ

तलाऊ भूमि आमतौर पर पहाड़ियों की तलहटी में स्थित होती है तथा नदियों व सहायक नदियों के समीप होती है जिससे यह स्थायी रूप से सिंचित होती है। इनकी जलवायु हल्की, चौड़ी तथा समतल घाटियाँ होती है और निचले क्षेत्र में अच्छी उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी होती है। तलाऊ भूमि को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। प्रथम श्रेणी की तलाऊ भूमि को सेरा कहा जाता है। सेरा में पानी की आपूर्ति बारहमासी होती है और धीरे-धीरे बहता है, खेत नीचे होता है तथा इसकी मिट्टी बेहतरीन होती है और इसमें दोहरी फसल एक सामान्य प्रथा है। सेरा में हमेशा खेती होती है इसे कभी परती नहीं रहने देते है। खरीफ के मौसम में सिंचित धान और रबी में गेहूँ, जौ सरसों आदि मुख्य फसल उगाई जाती है।

पंचेर

पहाडियों पर रुक-रुक कर आने वाली धाराओं से पंचेर की भूमि सिंचित होती है। ये ऊँचाई वाले क्षेत्र पर स्थित होती हैं और तुलनात्मक रूप से इसकी उत्पादकता निम्न हैं।

सिमर

तराई और पहाड़ियों की तलहटी (फुट हिल्स) में जलजमाव व दलदल वाली भूमि में खेती की जाती है जिसे सिमर कहते है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों की फसल प्रणाली में धान, गेहूँ और मंडुआ तीन सबसे प्रमुख फसलें हैं जिनका योगदान सकल फसली क्षेत्र का 70 प्रतिशत से अधिक है। विभिन्न जीवन रूपों के निर्वाह के लिए उपयुक्त रखरखाव और प्रबंधन, जैविक खेती का एक अनिवार्य घटक है जितना हो सके इसे खेतों के आसपास के क्षेत्र की फसल विविधता को बनाए रखकर तथा प्राकृतिक जैव विविधता का संरक्षण कर प्राप्त किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि भूमि के पास विभिन्न प्रकार के पेड़ और झाड़ियाँ देखाई देती है जो फसल की विकास के लिए मूल्यवान पोषक तत्व प्राप्त करने में मद्द करते हैं मिश्रित वनस्पति, पक्षियों और मित्र कीटों के लिए आश्रय और भोजन भी प्रदान करती है जो बदले में फसल को कीटों के हमले से बचाता है और इस प्रकार फसल की उत्पादकता को बढ़ाता है। चूंकि खेती के लिए निवेश खेत आधारित हैं, इसलिए किसान आत्मनिर्भर, स्वतंत्र और कर्ज से बच जाता है।

मिट्टी की उथली और पथरीली बनावट तथा बारिश से बहाव के कारण पर्वतीय कृषि में खाद का महत्वपूर्ण स्थान है। तलाऊ भूमि में गूल (छोटे नालें) द्वारा नीचे लाई गई गाद उन्हें उपजाऊ रखने के लिए पर्याप्त होती है खाद की सबसे ज्यादा जरूरत उपराऊ भूमि में होती है। गाय और भैंस के गोबर का उपयोग आमतौर पर खाद के लिए किया जाता है। पत्तियों, गोबर, मूत्र और कूड़े के मिश्रण से तैयार किया पत्ती खाद कुछ महीनों के लिए विघटित करने बाद उपयोग किया जाता है।

आमतौर पर मकानों के बाहर ढेरों में ढ़के हुए गोबर की खाद, का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है। राज्य के बड़े हिस्से में गाथ प्रणाली प्रचलित है इसमें पल्ला या फरखा द्वारा एक शेड का निर्माण करते है - एक प्रकार का फूस बाड़ा/छप्पर लकड़ी, बाँस, घास-फूस, पत्ते से बनी छप्पर और पत्ते का बना लगभग 2.5 x~ 1.5 मीटर। शेड को गोथ कहा जाता है और जहाँ भी खाद की आवश्यकता होती है इसे एक खेत से दूसरे खेत में मवेशी के साथ ले जाया जाता है। आजकल, यह प्रथा विलुप्त होने लगी है।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में जैविक कृषि प्रोत्साहन हेतु जैविक संतृप्तीकरण योजना के अन्तर्गत चयनित 10 विकासखण्डों में रसायन व सिंथेटिक उर्वरक, कृषि रक्षा रसायन, पशु औषधियों एवं हार्मोन्स आदि के प्रयोग पर प्रतिबन्ध है ये विकासखण्ड है यथा-उखीमठ, जखोली, एवं अगस्त्यमुनि (रूद्रप्रयाग), सल्ट (अल्मोड़ा), देवाल (चमोली), मुन्स्यारी (पिथौरागढ), बेतालघाट (नैनीताल), जयहरिखाल (पौड़ी), प्रतापनगर (टिहरी) तथा भटवाड़ी (उत्तरकाशी) इन विकासखण्डों में कृषि, उद्यान, पशुपालन, मत्स्य विकास, जड़ी-बूटी, रेशम विकास एवं वन विभाग आदि द्वारा संचालित किये जाने वाले समस्त कार्य जैविक आधारित है। यहाँ प्रयोग किये जाने वाले फसलों, सब्जियों, चारा एवं अन्य किस्म के बीजों का उपचार केवल जैविक रसायनों से ही किया जाता है। यहाँ भूमि शोधन का कार्य, खड़े फसलों पर रोग एवं कीट नियंत्रण हेतु केवल जैविक पद्वति ही अपनायी जाती है अथवा जैविक रसायनो का ही प्रयोग किया जाता है। यहाँ केवल जैविक खाद जैसे-वर्मी कम्पोस्ट, कम्पोस्ट, हरी खाद, बायो फर्टीलाइजर आदि प्रयोग किया जाता है। उत्पादन प्रभावित न हो इसके लिये जैविक खादों का अधिक से अधिक उत्पादन करते हुये प्रयोग में लाते है। पर्वतीय क्षेत्रों में जैविक खेती के लिए धान की निम्नलिखित प्रजातियाँ भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड द्वारा विकसित की गयी है जो विमोचित हो चुकी है जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

वी. एल. धान 65: यह प्रजाति उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए सिंचित रोपाई वाली अवस्था हेतु जारी की गई है। यह हिमालया 2 तथा वी. एल. धान 16 के संकरण द्वारा विकसित की गई है। जैविक स्थिति में इसकी औसत उपज 45-55 कु./है. है। यह झोंका के प्रति सहिष्णु तथा भूरी चित्ती एवं पर्णच्छद विगलन के लिए प्रतिरोधी है। इसकी ऊँचाई 125-130 से.मी., दाना मध्यम पतला है तथा यह प्रजाति 125-130 दिनों में पक जाती है।

वी. एल. धान 85: यह राज्य प्रजाति विमोचन समिति द्वारा उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रो में सिंचित रोपाई परिस्थितियों के लिए जारी की गई है। यह एचपीयू 799 एवं वी. एल. धान 221 के क्र.स. से निकाली गई है। जैविक स्थिति में इसकी औसत उपज क्षमता 45-50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसका दाना लम्बा मोटा एवं पौधे की ऊँचाई 110-115 सें.मी. होती है और यह 118-120 दिनों में पक जाती है। इसमें ब्लास्ट, ब्राउन लीफ स्पॉट और लीफ स्कैल्ड रोगों के खिलाफ प्रतिरोध क्षमता है।

विवेक धान 154: यह उपजाऊ धान की अगेती परिपक्वता वाली प्रजाति है जिसके पकने की अवधि 100-110 दिन है। यह उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षाश्रित जून बुवाई (जेठी धान) हेतु उपयुक्त पायी गयी है। इसे राज्य प्रजाति विमोचन समिति द्वारा जारी किया गया है इस प्रजाति के पौधे की ऊँचाई 100-110 से.मी. तथा दाना मध्यम मोटा होता है यह जैविक दशाओं के लिए उपयुक्त पायी गई है तथा इसकी उपज क्षमता 20-25 कु./है. इसमें पर्वतीय क्षेत्रों में उपराऊ धान में लगने वाले मुख्य रोग एवं कीट के प्रति प्रतिरोधक क्षमता है।

वी. एल. धान 156 (वी. एल. 7620): यह प्रजाति राज्य प्रजाति विमोचन समिति द्वारा विमोचित की गयी है तथा वर्ष 2016 में अधिसुचित की गई है। इसे उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों (निचले पर्वतीय क्षेत्र से लेकर मध्यम पर्वतीय क्षेत्र 1300 मी. तक की ऊँचाई तक) वर्षाश्रित उपजाऊ अवस्था के लिये जून माह में बुवाई (जेठी धान) हेतु संस्तुत किया गया है उपजाऊ अवस्था में ज्यादातर प्रजातियों का दाना छोटा एवं मोटा होता है परन्तु इस प्रजाति का दाना लम्बा एवं पतला है साथ ही इसके दाने में चमक है जो देखने में आकर्षित लगता है। इसकी उपज क्षमता 20-25 कु./हेक्टेयर है तथा इसके पौधे की ऊँचाई 95-100 से.मी. है जो कि दाने तथा पुआल दोनो के लिए उपयुक्त है। यह प्रजाति 115 से 120 दिन में पक कर तैयार हो जाती है तथा दाना पकने के बाद भी इसका तना हरा रहता है जो की हरे चारे के लिए उपयोग में लाया जा सकता है, तथा साथ ही इस प्रजाति मे झोंका, भूरी चित्ती तथा अन्य रोगों के लिए प्रतिरोधक क्षमता है।

वी. एल. धान 159 (आई ई टी 26598, वी एल 20083): यह वर्षाश्रित उपराऊ पारितंत्र के अंर्तगत शीघ्र पकने वाली प्रजाति है जो 110 से 115 दिन में पककर तैयार होती है। इसे उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में जून के महीने मे (जेठी धान) बोया जाता है। इसके दाने लम्बे मोटे होते हैं और पौधे की ऊँचाई 95 से 105 सें. मी. है। इसका विशिष्ट लाल भूरे रंग का (छिलका उतरा हुआ) दाना बाजार में सामान्य चावल की तुलना में अधिक कीमत प्रदान कर सकता है। यह प्रजाति मुख्य बीमारियों जैसे पत्ती एवं बाली झोंका, भूरी चित्ती, पर्णच्छद विगलन, आभासी कण्ड, पर्णदाह तथा कीट पीड़क अर्थात् तना बेधक एवं पत्ती लपेटक के लिए प्रतिरोधी थी यह राज्य विमोचन प्रजाति समिति, उत्तराखण्ड द्वारा विमोचित की गयी थी। यह वीएल 66/एचपीआर 2143 के बीच का एक संकरण था। इस प्रजाति ने जैविक अवस्थाओं के अन्तर्गत 1,964 कि.ग्रा./है. औसत उपज दिखाई है जो कि सर्वश्रेष्ठ चैक वीएल धान 221 से 21.74% अधिक है।

वी. एल. सिक्किम धान 4 (आई ई टी 26596, वी एल 32130): यह प्रजाति भा.कृ.अ.नु.प.-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड तथा भा.कृ.अ.नु.प.

-राष्ट्रीय जैविक खेती अनुसंधान संस्थान गंगटोक, सिक्किम के सहयोग से राज्य विमोचन प्रजाति समिति, सिक्किम द्वारा विमोचित की गयी तथा एस ओ 500 (ई) दिनांक 29.01.2021 के तहत अधिसूचित की गई है। यह सिक्किम के मध्यम पर्वतीय क्षेत्रों के अतंर्गत सिंचित रोपाई अवस्था हेतु अगेती एवं समय से बोआई तथा जैविक अवस्था में खेती हेतु उपयुक्त है। इसमें विशिष्ट लाल भूरे रंग का छिलका उतरा हुआ दाना होने के कारण बाजार में सामान्य चावल की तुलना में इसकी किस्मत ज्यादा प्राप्त कर सकती है। इसने सिक्किम में लगातार अच्छा प्रदर्शन करते हुए 2018 एवं 2019 के दौरान (4,855 कि.ग्रा./है.) उपज के साथ सर्वश्रेष्ठ चैक मनीपौ-11 तथा वी. एल. धान 62 से क्रमशः 86 तथा 40 श्रेष्ठता प्रदर्शित की। द्विवर्षीय परीक्षण मे इसने सभी चैक अर्थात राष्ट्रीय चैक, वी. एल. धान 62 (4,471 कि.ग्रा./है.); क्षेत्रीय चैक, मनीपौ-11 तथा स्थानीय चैक, अटेय की तुलना में बेहतर प्रदर्शन किया। इसके पौधे की ऊँचाई 90 सें.मी., पुष्पक अवस्था 89 दिन, मध्यम परिपक्वता अवधि (135 दिन) के साथ प्रति वर्ग मीटर बालियो की ज्यादा संख्या (344) है। प्रकृतिक अवस्था अंर्तगत इसने पत्ती झौंका, पर्णच्छद विगलन, भूरी चित्ती, पर्णच्छद अंगमारी, आभासी कण्ड बीमारियों तथा प्रचलित कीट पत्ती लपेटक, तना बेधक, हरा फुढका एवं गंधी बग के प्रति प्रतिरोधकता प्रदर्शित की है।

वी. एल. धान 207: यह प्रजाति राज्य प्रजाति विमोचन समिति, उत्तराखण्ड द्वारा जारी की गई है तथा केंद्रीय बीज समिति की कृषि फसलों के लिए फसल मानकों, अधिसूचना और किस्मों के विमोचन पर केंद्रीय उप-समिति, नई दिल्ली द्वारा अधिसुचित की गयी है। इस प्रजाति को उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षाश्रित उपजाऊ अवस्था, बसंतकालीन बुवाई (चैती धान) जैविक अवस्था में खेती हेतु उपयुक्त पाया गया है। इसे वी.एल. धान 206 एवं अन्नदा से विकसित किया गया है इसका दाना छोटा-मोटा होता हैं तथा पकने की अवधि 155-160 दिन है और इसकी उपज क्षमता 15-20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है यह पत्ती एवं बाली झौंका, भूरी चित्ती, पर्णदाह तथा आभासी कण्ड के लिए मध्यम प्रतिरोधी है।

वी. एल. धान 208: यह किस्म राज्य प्रजाति विमोचन समिति, उत्तराखण्ड द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों की वर्षाश्रित उपजाऊ एवं बसंतकालीन बुवाई (चैती धान) जैविक अवस्था में खेती हेतु जारी की गई है तथा केंद्रीय बीज समिति, नई दिल्ली द्वारा अधिसूचित की गयी है। यह वी आर 410-19 एवं वी आर 212 के बीच का संकरण है। इसके पौधो की ऊँचाई 100-110 से.मी., दाना छोटा व मोटा तथा पकने की अवधि 160-165 दिन है जैविक अवस्था में इसकी उपज क्षमता 19 से 21 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है तथा इसमे पर्वतीय क्षेत्रों में उपराऊ धान में लगने वाले मुख्य रोग एवं कीट के प्रति प्रतिरोधक क्षमता है।

वी. एल. धान 209: इस प्रजाति को हिमधान/के 39//वी. एल. धान 221 के संकरण से विकसित किया गया है। इसको उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षाश्रित उपराऊ चैती धान के लिए संस्तुत किया गया है। यह राज्य प्रजाति विमोचन समिति, उत्तराखण्ड द्वारा विमोचित तथा केंद्रीय बीज समिति, नई दिल्ली द्वारा अधिसूचित की गयी है। इसके पौधे की ऊँचाई 110-120 से.मी., दाना छोटा मोटा तथा पकने की अवधि 155-160 दिन है। जैविक स्थिति में इस प्रजाति की उपज क्षमता 18-20 कु./है. है। यह पत्ती एवं बाली झौंका, तना बेधक, पत्ती लपेटक के लिए प्रतिरोधी तथा भूरी चित्ती, पर्ण दाह, आभासी कण्ड के प्रति सहिष्णु है।

वी. एल. धान 210 (वी एल 11364): यह प्रजाति राज्य विमोचन प्रजाति समिति, उत्तराखण्ड द्वारा पर्वतीय क्षेत्रो के लिए वर्षाश्रित उपराऊ जैविक अवस्था चैती बुवाई के लिए विमोचित की गयी है। इसने जैविक अवस्थाओं में औसतन उपज 2,157 कि.ग्रा./है. दर्ज की है, जो कि सबसे अच्छी मानक किस्म वी.एल. धान 207 (1,569 कि.ग्रा./है.) से 37.6 प्रतिशत अधिक थी। यह किस्म वी.एल. धान 207/वीएल 30424 से विकसित की गयी है। इसके दाने लम्बे पतले, पौधे की ऊँचाई 95-110 सें.मी., पकने की अवधि 140-150 दिन तथा यह पत्ती एवं बाली झौंका रोग के लिए प्रतिरोधी है।

वी. एल. धान 211 (वी एल 11574): यह वर्षाश्रित उपराऊ चैती बुवाई हेतु प्रजाति है जिसे राज्य विमोचन प्रजाति समिति, उत्तराखण्ड द्वारा जैविक अवस्था अंर्तगत पर्वतीय क्षेत्रों के लिए विमोचित की गयी है। इसके दाने छोटे मोटे, पौधे की ऊँचाई 100-110 सें.मी., पकने की अवधि 140-150 दिन तथा पत्ती एवं बाली रोग के लिए प्रतिरोधी है। तीन वर्षों के परीक्षण के आधार पर इसने जैविक अवस्थाओं में 2,088 कि.ग्रा./है. औसत उपज प्रदर्शित की है जो वी.एल. धान 207 से 33.20 प्रतिशत तथा वी.एल. धान 209 से 39.02 प्रतिशत अधिक उपज है। यह किस्म वी.एल. धान 209/वीएल 30424 से विकसित की गयी है।

कृषि क्षेत्र में नवाचार

1. भारत में डिजिटल कृषि

भारतीय कृषि में डिजिटलीकरण की माँग को अच्छी तरह से समझा और स्वीकार किया गया है, इसी तरह प्रचलित मूल्य श्रृंखला को डिजिटल बनाने की दिशा में भी प्रयास किए गए हैं।

सितंबर 2021 में, केंद्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्री, श्री नरेंद्र सिंह तोमर ने डिजिटल कृषि मिशन 2021-2025 की शुरुआत की घोषणा की, वही पायलट परियोजना के माध्यम से डिजिटल कृषि को आगे बढाने के लिये उन्होंने सिस्को (CISCO), निन्जाकार्ट (Ninjacart), जियो प्लेटफॉर्म्स लिमिटेड (Jio Platforms Limited), आईटीसी (ITC Limited) के साथ पाँच समझौता ज्ञापन (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए। डिजिटल कृषि मिशन 2021-2025 का उद्देश्य एआई (AI), ब्लॉक चेन (Bolck chain), रिमोट सेंसिंग और जीआईएस (GIS) तकनीक, ड्रोन और रोबोट के उपयोग जैसी नई तकनीकों पर आधारित परियोजनाओं का समर्थन करना और उनमें तेजी लाना है।

2. आम की नयी संकर किस्म एन एम बी पी.1234 (NMBP-1243)

राष्ट्रीय आम प्रजनन कार्यक्रम (NMBP) द्वारा आम की तीन नई किस्में विकसित की गई हैं। NMBP-1243 इरविन और केंसिंग्टन प्राइड KP के बीच एक हाइब्रिड क्रॉस है। उपज मध्यम से भारी और साल दर साल लगातार होती है। फल का औसत वजन 507 ग्राम होता है।

इसमें हल्के पीले रंग की पृष्ठभूमि पर एक मजबूत लाल/गुलाबी ब्लश है और केपी के समान स्वाद है। यह शुरुआती मौसम की किस्म है जो केपी से दो से चार सप्ताह पहले पकती है। गर्म पानी की सूई और वाष्प गर्मी उपचार से थोड़ा नुकसान होता है। NMBP-1243 ऑस्ट्रेलियाई प्लांट ब्रीडर के अधिकार कानून के तहत लाइसेंस और संरक्षित है।

3. ड्रोन आधारित आलू फसल प्रबंधन प्रौद्योगिकियाँ

मानव रहित हवाई वाहन, जिसे ''ड्रोन'' के रूप में भी जाना जाता है, के अनुप्रयोग की अपार संभावनाओं के मद्देनजर, भा.अनु.प.-केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला, हिमाचल प्रदेश ने ''ड्रोन-आधारित आलू फसल प्रबंधन प्रौद्योगिकियों के विकास'' के लिए काम शुरू किया है। 2020 से मोदीपुरम् और जालंधर के इसके क्षेत्रीय स्टेशन हैं। यह पहल बायर क्रॉप साइंस लिमिटेड इंडिया और जनरल एरोन टिक्स प्राइवेट के सहयोग से की गई थी। लिमिटेड के पास आलू की फसल के लिए सटीक फसल प्रबंधन प्रौद्योगिकियों को विकसित करने का परिभाषित उद्देश्य है

4. केला फाइबर प्रसंस्करण

केले के लिए आईसीएआर-राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र, तिरुचिरापल्ली, तमिलनाडु ने केले के फाइबर प्रसंस्करण के लिए एक पर्यावरण के अनुकूल प्रौद्योगिकी का लाइसेंस कुशीनगर, उत्तर प्रदेश की श्रीमती अनीता राय, महिला उद्यमी और जिला प्रशिक्षक, पीएमएफएमई योजना को हस्तान्तरित किया।

5. कुफरी संगम, आलू की नई प्रजाति

कुफरी संगम एक मध्यम परिपक्व, मुख्य मौसम उच्च उपज देने वाले दोहरे उद्देश्य वाले आलू की किस्म है जो मध्य मैदानों (प्रसंस्करण और टेबल उपयोग के लिए) और उत्तरी मैदानों (चित जंइसत उद्देश्य) में खेती के लिए उपयुक्त है, यह उथली आँखों और क्रीम मांस के साथ आकर्षक सफेद क्रीम अंडाकार कंद पैदा करता है। कुफरी संगम में 18.20% कंद शुष्क पदार्थ, कम करने वाली शर्करा (<150mg/100g ताजा वजन), मैली टेचर, बहुत अच्छा स्वाद और गुणवत्ता होती है।

7. वर्चुअल लर्निंग मोबाइल ऐप ''मत्स्य सेतु'' लॉन्च किया गया

श्री गिरिराज सिंह ने 6 जुलाई, 2021 को आईसीएआर-सीआईएफए द्वारा विकसित वर्चुअल लर्निंग मोबाइल ऐप ''मत्स्य सेतु'' लॉन्च किया। एनएफडीबी, हैदराबाद के सहयोग से विकसित ऐप का उद्देश्य एक्वा किसानों को नवीनतम मीठे पानी की जलीय कृषि तकनीक प्रदान करना है।

8. ब्रिमेटो

भा.अनु.प.-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश में ग्राटेड पोमैटो (आलू-टमाटर) के सफल क्षेत्र प्रदर्शन के बाद, 2020-21 के दौरान क्षेत्र में बैंगन और टमाटर (ब्रिमेटो) की दोहरी ग्राटिंग का प्रदर्शन किया गया। बैंगन हाइब्रिड-काशी संदेश और टमाटर की उन्नत किस्म-काशी अमन को बैंगन के रूटस्टॉक-IC 111056 पर सफलतापूर्वक ग्राट किया गया। प्रत्येक पौधे से 2.3 किलोग्राम टमाटर और 2.64 किलोग्राम बैंगन की पैदावार होती है। इसकी बड़े पैमाने पर खेती करने की योजना है।

9. मलाया रोज एप्पल

मलाया रोज एप्पल *(एस मैलाकेंस)* को माउनटेन एप्पल के रूप में भी जाना जाता है, मलाया जामुन हिंदी में, कन्नड़ में जाम्बेय मराठी में मलाया जांबा, मायर्टेसी परिवार से संबंधित है, जिसे भारत में पुर्तगाली नाविकों द्वारा पेश किया गया था।

10. हैप्पी सीडर

हैप्पी सीडर अवशेष जलाने का आर्थिक रूप से व्यवहार्य विकल्प प्रदान करता है। यह किसानों को भूमि की तैयारी के लिए धान के अवशेषों को जलाए बिना उनके धान की कटाई के तुरंत बाद गेहूँ की बुवाई करने की अनुमति देता है।

11. डॉ. एस. अय्यप्पन, पदम श्री पुरस्कार-2022 से सम्मानित

डॉ. एस. अय्यप्पन, पूर्व सचिव (डेयर) और महानिदेशक (आईसीएआर) को देश में जलीय कृषि के क्षेत्र में उनके अद्वितीय योगदान के लिए प्रतिष्ठित पदम श्री पुरस्कार-2022 से सम्मानित किया गया है।

12. डॉ. मोती लाल मदान पद्म श्री पुरस्कार-2022

डॉ. मोती लाल मदान, पूर्व उप महानिदेशक (पशु विज्ञान), भा.अनु.प. को देश में विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में उनकी विशिष्ट सेवाओं और योगदान के लिए प्रतिष्ठित पद्म श्री पुरस्कार-2022 से सम्मानित किया गया है।

13. आईसीएआर-सीसीएआरआई, गोवा द्वारा नामित श्री अमाई महालिंग नाइक को पद्म श्री पुरस्कार-2022 से सम्मानित किया गया

आईसीएआर-सीसीएआरआई, गोवा द्वारा नामित श्री अमाई महालिंग नाइक को पद्म श्री पुरस्कार-2022 से सम्मानित किया गया। कर्नाटक के तटीय दक्षिण कन्नड़ जिले के अद्यानाडका गाँव के एक अभिनव किसान श्री अमाई महालिंग नाइक (आयु 77 वर्ष) को अभिनव शून्य-ऊर्जा सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के माध्यम से एक शुष्क ढलान वाली पहाड़ी को उपजाऊ खेत में बदलने के लिए प्रतिष्ठित पद्म श्री पुरस्कार-2022 से सम्मानित किया गया है।

14. पीएसएलवी सी52 मिशन का सफलतापूर्वक प्रक्षेपण

PSLV-C52 को भारत के आंध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा में सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र के पहले लॉन्च पैड से लॉन्च किया गया था। PSLV C52 रॉकेट 2 अन्य उपग्रहों के साथ प्राथमिक पेलोड, RISAT-1A ले गया। ये IIST से INSPIREsat और ISRO ls INS-2TD प्रौद्योगिकी प्रदर्शक होंगे EOS-04 उपग्रह कृषि, वानिकी और वृक्षारोपण, मिट्टी की नमी और जल विज्ञान के साथ-साथ बाढ़ मानचित्रण के लिए सभी मौसमों में उच्च रिजॉल्यूशन की छवि प्रदान करेगा।

संकलनः डॉ गोविंद विश्वकर्मा,
शिक्षण एवं शोध सहायक, फल विज्ञान

Swachh Bharat Abhiyan

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284003 (उ.प्र.) भारत

PARAMPARAGAT KRISHI VIKAS YOJANA
ORGANIC FARMING GAINS MOMENTUM

आत्मनिर्भर भारत अभियान